http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[त्रयोदश भाग]

●

प्रवक्ता :

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

ज्ञानादिक गुणोंके मूलोच्छेदनको मोक्ष माननेकी शङ्का—विशेषवादी दार्शनिक शङ्का कर रहा है कि मोक्षका स्वरूप ज्ञान दर्शन शक्ति आनन्द इन अनन्त चतुष्टयोंका लाभ होना नहीं हो सकता है। मोक्षका स्वरूप तो बुद्धि, सुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार इन ९ गुणोंके उच्छेदरूप है अर्थात् जहाँ आत्मामें ये ९ गुण नहीं रहे, ये नष्ट हो जायें ऐसा निर्गुण हो जाय आत्मा उसका नाम मोक्ष है। इन गुणोंका उच्छेद हो जाया करता है इसका प्रमाण है। इसका अनुमान प्रयोग कर लीजिये। आत्माके नवों विशेष गुणोंका संतान बिल्कुल नष्ट हो जाता है क्योंकि संतान होनेसे। जो जो संतान है वह संतान कभी एकदम सब समाप्त हो सकता है। जैसे प्रदीप संतान। एक दीपकमें जितने तेलके बूँद जल रहे हैं क्रमशः दीपक वे उतने हैं, एक एक बूँद एक एक दीपक बनता जा रहा है और ऐसा १५ मिनट तक दीपक जले तो उसमें हजार दीपक बन गये। ये दीपक न्यारे न्यारे हैं क्योंकि उनके कारणभूत बूँद भी न्यारे न्यारे हैं। तो उन न्यारे न्यारे दीपकोंमें जो यह भ्रम हो गया है कि एक दीपक है और उससे फिर जो व्यवहार चल उठा है इसका कारण है संतान। उन नाना दीपकोंमें जो एक संतान बन गया उस संतानसे यह व्यक्तरूप हो गया है। तब देखो कभी ये संतान मिट जाते हैं ना ? मिट जाते हैं ! दीपक बुझ जाता है, पिता पुत्रकी संतान चलती है, चलती रहती है, कभी यह संतान नष्ट हो भी जाती है ना कहीं ? हो भी जाती है। इसी प्रकार इस आत्माके ज्ञानादिक गुणोंकी संतान चल रही है तो वह संतान भी नष्ट हो जाती है। तो जहां ज्ञानादिक गुणोंकी संतान नष्ट हुई है उसका नाम मोक्ष है। शङ्काकारका भाव यह है कि आत्मा तो एक चित् स्वरूपमात्र है. उसका विकास नहीं, परिणमन नहीं, व्यक्तरूप नहीं, वह तो एक परिणामी तत्त्व है, आधारभूत है। अब उस आत्मामें जब ज्ञान सुख दुःख इच्छा आदिक बातें लग बैठी तो आत्मामें ये बातें लग गयीं और ये चल रही हैं तो इन गुणोंका जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह चलना है आत्मामें बस इसका नाम संसार है। जिस समय इसकी यह संतान समाप्त हो जायगी तो ये गुण खतम हो जायेंगे और तब आत्माका मोक्ष कहलाता है।

काल्पनिक भी कुछ फर्क विदित होनेपर भिन्न भिन्न सत् माननेका सिद्धान्त—इस विशेषवादमें यह मूल तंत्र बताया है अपने सिद्धान्तका कि जहां लक्षणसे या अन्य भी किसी निगाहसे जरा भी फर्क समझमें आया, भेद ज्ञानमें आया तो वे न्यारी-न्यारी चीजें हैं उनका सत्त्व जुदा जुदा है। जैसे विशेषवादकी झलकमें आजकल वैज्ञानिक भी अपनी बुद्धिमें आये हुए अणुवोंमें जो कि स्कंधरूप ही है उनमें जो शक्तियां हैं उन शक्तियोंको जुदा जुदा तत्व माने जा रहे हैं और स्वतन्त्र माने जा रहे हैं और प्रयोग भी ऐसा किया करते हैं कि उसकी शक्ति वहांसे हटा दे कहीं अन्यत्र लगा दे। शक्तिमय ही वह सूक्ष्म स्कन्ध है इस ओर उनका ध्यान नहीं। इसका मतलब है कि शक्तिको ही वे एक पदार्थ मानने लगे। इनर्जी कोई किसी आधारमें रहती है, इस मन्तव्यसे हटकर इनर्जी स्वयं एक स्वतन्त्र तत्त्व है, ऐसा आजकलके वैज्ञानिक तक भी मानने लगे हैं, ऐसे ही विशेषवादके सिद्धान्तमें यह तंत्र अपना लगाया कि जहाँ समझमें कुछ भी भेद आया कि समझ गए वे सब जुदी जुदी चीजें हैं। तो आत्मा में ज्ञान है, शक्ति है, सुख है, दुःख है, इच्छा है, ये अनेक बातें समझमें आ रही हैं और भिन्न समझमें आ रही हैं। आत्मा तो कोई एक है। जितने ये सुख हैं ये आत्मा नहीं हैं, जितनी ये इच्छायें हैं ये आत्मा नहीं हैं। इच्छाका स्वरूप न्यारा है आत्माका स्वरूप न्यारा है, ज्ञानका स्वरूप न्यारा है। ज्ञानगुण है, आत्मा द्रव्य है। तो द्रव्यकी सत्ता न्यारी है गुणकी सत्ता न्यारी है।

विशेषवादमें गुणोच्छेदको मोक्ष माननेका प्रयोग—यह विशेषवाद सिद्धान्तकी बात चल रही है जिसकी कि यह प्रकृति है कि किसी भी पदार्थमें स्वरूपका, लक्षणका, शक्तिका, गुणका, क्रियाका भेद करके उन सबको जुदे जुदे सत् मान लें, हैं वे सब पदार्थ, ऐसा मानलें। ऐसा इनका तत्र है, युक्ति है, उसी युक्तिपर यह कह रहे हैं कि मोक्ष इसका नाम नहीं है कि आत्मामें ज्ञान अनन्त हो गया, शक्ति अनन्त हो गई, आनन्द अनन्त हो गया, इसके मायने मोक्ष नहीं है किन्तु आत्मामेंसे ज्ञान उड़ गया, खतम हो गया, शक्ति नष्ट हो गयी, आनन्द समाप्त हो गया, खाली अब आत्मद्रव्य रह गया, गुण सब खतम हो गए इसका नाम मोक्ष है। ऐसा विशेषवादी मोक्षके स्वरूपकी बात कह रहे हैं और इस सिद्धान्तके रखनेमें वे अनुमान प्रयोग कर रहे हैं कि ज्ञानादिक गुणोंकी संतानका कहीं मूलतः उच्छेद हो सकता है, क्योंकि संतान होनेसे। लोकमें जो भी संतान हैं, जो एक परम्परा हैं जिससे वह संतान कहलाता है, जो भी संतान है वह कभी नष्ट हो जाता है। जैसे दीपककी संतान है तो कभी यह नष्ट हो जाती है।

गुणोच्छेद सिद्ध करनेके लिये दिये गये हेतुको निर्दोष बतलानेका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपक्रम—बुद्धयादिक संतानोच्छेदके अनुमान प्रयोगमें दिये गये हेतुके दोषको दूर करनेके लिए बतला रहे हैं कि हमारा हेतु असिद्ध नहीं है। हेतु असिद्ध उसे कहते हैं कि जिस पक्षमें हेतु रहता है, उस पक्षमें हेतु न पाया जाय। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे, यह अनुमान बनाया। अगर धूम पर्वतमें नहीं पाया जा रहा है फिर भी कोई हेतु बना रहा है तो यह असिद्ध हेतु कहलाता है। इस तरह ये ज्ञानादिककी संतान असिद्ध नहीं हैं। ज्ञानादिकमें संतान पाया जा रहा है। विरुद्ध हेतु भी यह नहीं है। विरुद्ध हेतु उसे कहते हैं कि जिसका अन्य कोई दृष्टान्त ही न मिले। जैसे पर्वतमें अग्नि है, धुवां होनेसे। इसको हम बता सकते हैं कि हमारा हेतु यह अनुकूल है, विरुद्ध नहीं है। देखो रसोईघरमें भी धुवां दिखता है और अग्नि वहां पाई जाती है। तो यह हमारा संतान हेतु भी अविरुद्ध है। जैसे दिया जल रहा है ना, तो १५ मिनटमें तेलकी हजारों बूँदें जलती हैं तो १५ मिनटमें वे दीपक हजारों हैं, एक दीपक नहीं है, पर उन हजारों दीपकोंमें अन्तर नहीं आ पाया, वे निरन्तर जलती रहीं—यही तो संतान है। तो यह संतान नष्ट हो जाती है ना। दीपकके आगे कूड़ा अड़ गया तो दीपक बुझ गया। तो संतान हेतु विरुद्ध भी नहीं है। संतानत्व हेतु अनैकान्तिक भी नहीं है। अनैकान्तिक वह कहलाता है जो हेतु अपने अनिष्ट साध्यको भी सिद्ध करदे और इष्ट साध्यको भी सिद्ध करदे। जैसे कोई यह अनुमान बनाये कि अग्नि ठंडी होती है क्योंकि पदार्थ होनेसे। जो भी पदार्थ होते हैं वे ठंडे होते हैं—जैसे पानी। ठीक है, पानीमें बात आ गई पर विद्युत आदिक गर्म चीजोंमें तो यह बात नहीं घटित होती। यह प्रत्यक्षबाधित भी है, तो भी उभयवृत्तिपना देखें। जो इष्ट अनिष्ट दोनोंको सिद्ध करे उसे अनेकान्तिक कहते हैं। तो संतानत्व हेतु अनेकान्तिक दोषसे दूषित भी नहीं है क्योंकि विपक्ष परमाणु आदिकमें संतानत्व हेतुकी प्रवृत्ति है नहीं, संतानत्व हेतु कालात्ययापदिष्ट भी नहीं है। जो हेतु सिद्ध किया जा रहा है उससे विरुद्ध बात यदि प्रत्यक्षसे ही सिद्ध हो तो वह हेतु बाधित कहलाता है। हमारा संतानत्व हेतु बाधित नहीं होता, न उसमें प्रत्यक्षसे बाधा है न परोक्षसे। यों संतानपना होनेसे यह सिद्ध है कि आत्मामें जो ज्ञान सुख दुःख आदिक गुण पाये जा रहे हैं इनका कहीं मूलतः नाश हो जाता है। और गुणोंका मूलतः नाश हो जानेका नाम ही मोक्ष है ऐसा वैसेसिक दर्शनवादी कह रहे हैं।

गुणोच्छेदको मोक्ष माननेकी असङ्गतताका प्रतिपादन—अब इसके समाधानमें कहते हैं कि यह कहना युक्त नहीं है कि आत्मामें जो ९ विशेष गुण पाये जाते हैं उनका अत्यन्त उच्छेद हो जाता है, क्योंकि संतान होनेसे। अरे, पहिले यह ही सिद्ध नहीं कर सकते कि उसमें संतान होती है और ये भिन्न भिन्न चीजें हैं और इनका फिर समवाय सम्बन्ध होता है तब ये जुड़ते हैं यह बात भी सिद्ध नहीं कर सकते। जब हेतु ही सिद्ध न रहा तो हेतु आश्रयासिद्ध हो गया। जैसे पर्वतमें धुवाँ नहीं है तो यह कैसे सिद्ध करोगे कि इस पर्वतमें अग्नि है!

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशेषवादमें पदार्थोंकी संख्या— विशेष सिद्धान्तमें इस तरहकी व्यवस्था मानी है कि पदार्थ ६ तरहके होते हैं – द्रव्य, गुण, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। जब कि स्याद्वादमें ६ पदार्थ इस तरह माने हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। ये छहोंके छहों पदार्थ जो स्याद्वाद दर्शनमें माने गए हैं इन सबको वे एक द्रव्यमें ही मान लेते हैं, किन्तु उसमें कुछ माने भी गए, कुछ नहीं भी माने गए। जैसे धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य तो विशेषवाद ही क्या, किसी भी दर्शनने नहीं माना कि है कोई लोकमें ईथर सूक्ष्मतत्त्व जो जीव और पुद्गलकी गतिमें सहायक होता है। व जीव और पुद्गल चलते हुए ठहरें तो जीव पुद्गलके ठहरनेमें सहायक होता है अधर्मद्रव्य। ऐसे धर्म अधर्म द्रव्य जैन शासनके अतिरिक्त कहीं नहीं माने गए। कल्पना तो इनकी अब भी की जा रही है। वैज्ञानिक लोग आकाशमें तत्त्वकी खोज कर रहे हैं जो कि सबके गमनमें आश्रय रूप पड़ता है।

वैशेषिक सिद्धान्तके संक्षिप्त विवरणमें द्रव्य और गुणका सत्त्व— यहाँ विशेषवाद सिद्धान्तका थोड़ा विवेचन किया जा रहा है। देखिये —६ जातिके पदार्थ स्याद्वाददर्शनमें माने गए हैं वे सब पदार्थ इनके कल्पित द्रव्यमें गर्भित नहीं है, कुछ हैं। तो सब पदार्थ आवें या न आवें, या कुछ पुनरुक्त हों, उन सबको एक द्रव्यमें ही शामिल कर लिया गया विशेषवादमें। अब द्रव्यमें गुण भी तो पाए जा रहे हैं। जैसे ये पुद्गल पदार्थ हैं – इनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श पाए जा रहे हैं कि नहीं ? तो इसमें रूप है जो कि कालापनेमें व्यक्त हो रहा है। गुण हैं, इसके अन्दर रूप आदिक हैं तो विशेषवादमें रूप आदिक गुण जुदे सत् माने गए हैं जब कि स्याद्वाद दर्शनमें पुद्गलकी शक्ति पुद्गलमें ही तन्मय है। उनको छोड़कर अणु और कुछ चीज नहीं है, ऐसा माना गया है और विशेषवादमें गुण स्वतंत्र सत् है, वे भौतिक पदार्थ स्वतन्त्र सत् हैं यों विशेषका, भेदका विस्तार किया गया है। फिर प्रश्न होता है कि अब ये स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत् हैं गुण और गुणी, द्रव्य और गुण जब ये अपना स्वतन्त्र स्वरूप रख रहे हैं तो स्वतन्त्र ही कहलाए। फिर हमारे आत्मामें सम्बन्ध कैसे जुड़ा ? जैसे दो पुरुष न्यारे हैं तो न्यारे ही हैं। उनमें यह कैसे कहा जायगा कि इसका यह है। इसमें यह है। तो इसके लिए एक पदार्थ माना गया है समवाय। समवाय एक ऐसा विचित्र तत्त्व माना है जो सारी दुनियामें एक है और उस समवायके कारण आत्मामें ज्ञानका समवाय हो जाता आदि। समवाय मायने घनिष्ट सम्बन्ध, मिलाप। आत्मामें ज्ञानका मिलाप, उस समवाय सम्बन्धके कारण है। परमाणुमें रूप रस आदिकका मिलाप समवाय सम्बन्धसे है।

विशेषवादमें क्रियाका स्वतन्त्र सत्त्व— विशेषवादमें कर्म (क्रिया) भी स्वतन्त्र सत् है। जैसे यह गुण अलग सत् माना गया है। इसी प्रकार क्रिया भी अलग सत है। अंगुलीने सीधा टेढ़ा परिणमन जो किया तो यह सीधा टेढ़ा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अलग चीज है और अंगुली अलग चीज है ऐसा माना गया है। आत्मामें जो भी क्रिया हो रही है, परिणतियां होती हैं, जो भी चेष्टायें होती है वे अलग स्वतन्त्र सत् हैं। आत्मा अलग स्वतन्त्र सत् है। फिर इनको सम्बन्धकैसे जुड़ा। जबकि स्याद्वाद दर्शनमें माना गया है कि पदार्थकी परिणति उस कालमें उस पदार्थमें तन्मय है, फिर बादमें वह परिणति है ही नहीं। चूंकि वह स्वयं सत् न था इसलिए अभाव माननेमें विरोध नहीं। स्वतन्त्र सत् होता तो प्रत्येक परिणति सदा रहनी चाहिए थी।

वैशेषिकसिद्धान्तमें सामान्य, विशेष और अभाव—पुनश्च, अब यहां पर कुछ ऐसा भी तो नजर आता है कि इनमें सामान्य और विशेष भी कोई चीज होती है। जैसे मनुष्य मनुष्य सब हैं। पर इनमें सामान्य मनुष्यपना भी तो कुछ है ना। जैसे कहा कि एक मनुष्यको बुला लावो तो चाहे वह बूढ़ेको लावे, चाहे जवानको लावे बच्चेको लावे, विद्वानको लावे मूर्खको लावे दीनको लावे अथवा धनीको लावे, चाहे जिसे लावे क्योंकि उसने मनुष्य सामान्यके लिए कहा था। और, कोई यदि यह कहे कि पंडितजीको बुला लाओ तो पंडितजी ही सिर्फ आयें. और कोई न आवे तब तो बात सही मानी जायगी। इससे मालूम होता है कि पदार्थमें सामान्य भी कोई चीज होती और विशेष भी कोई चीज होती। जब कुछ समझमें आया, कुछ जुदापन सा दीखा तो विशेषवादने उसे स्वतंत्र सत् मान लिया। सामान्य भी स्वतन्त्र सत् है और विशेष भी स्वतन्त्र सत् है। हां स्वतन्त्र सत् तो है पर वह पदार्थमें कैसे आ गया? एक और विलक्षण अभाव नामक पदार्थ माना है। जब कि स्याद्वादमें पदार्थ वह माना गया है जिसका सत्त्व हो, परिणमन हो, अर्थक्रिया हो. लेकिन विशेषवादमें कुछ समझ में आना चाहिए अलगसे बात कि सत मान लिया गया। विशेषवादमें अभाव भी एक पदार्थ है। किसीने कहा कि उस कमरेसे घड़ी उठा लावो। और घड़ी वहां थी नहीं, घड़ीका वहां अभाव था। तो जो अभाव है वह भी एक पदार्थ है क्योंकि ज्ञानमें आया ना, अभाव समझमें आया ना? जो समझमें आया वह पदार्थ है। यों ६ जातिके पदार्थ माने गए हैं।

गुणोच्छेदकी कल्पनापर विचार—इस प्रसङ्गमें यह दिखाया गया है कि गुण जितने होते हैं वे सब अलग हुआ करते हैं किसी पदार्थके गुण नहीं होते। उस पदार्थमें गुणका सम्बन्ध होता है तब वह गुणी कहलाता है। आत्मा ज्ञानी नहीं है, आत्मा अलग चीज है, ज्ञान अलग चीज है। जब ज्ञान गुणका समवाय सम्बन्ध आत्मा में होता है तो यह ज्ञानी कहलाता है। कोई उन विशेषवादियोंसे पूछ सकता है कि जब यह गुण अलग है आत्मा अलग है, ज्ञान न्यारा है आत्मा न्यारा है तो यह ज्ञान आत्मामें ही क्यों विराजे पृथ्वी आदिक अन्य भौतिक पदार्थोंमें क्यों नहीं सम्बन्ध कर लेता? ऐसे ऐसे प्रश्नोंके उत्तर देनेकी कोशिश की गई है किन्तु अन्तमें उत्तर देनेका प्रयास सफल नहीं हो पाता। आप ही सोच लो कि ज्ञान तो अलग वस्तु है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मा अलग वस्तु है तो पहिले तो यह ही ध्यानमें न आयेगा कि खाली ज्ञान आत्मा को छोड़कर किस प्रकारका होता होगा, जिसका कोई साधन नहीं जिसमें अवगाहने वाला गुण नहीं, वह क्या सत्व होता होगा यह समझमें न आयगा। और यहां यह आत्मा जिसमें ज्ञान नहीं, कोई गुण नहीं, फिर भी कुछ द्रव्य है, ऐसा निर्गुण द्रव्य क्या होता होगा? यह भी ध्यानमें नहीं आ सकता। हाँ स्वरूपभेद है, ज्ञानका स्वरूप एक गुणके रूपमें है, आत्माका स्वरूप पूर्ण पदार्थरूपमें है, पर हैं वे दोनों एक। ज्ञान बिना आत्मा क्या? आत्मा बिना ज्ञान क्या? लेकिन लक्षणभेद होनेसे कुछ समझ-भेद होनेसे ये अलग अलग मान लिए गए हैं। ऐसे वैशेषिक सिद्धान्तका एक सामान्य विवरण किया है।

गुणोच्छेदकी सिद्धिमें दिये गये संतानत्व हेतुकी असिद्धता—गुणोच्छेद को मोक्ष माननेपर कहा जा रहा है कि तुम संतान ही सिद्ध नहीं कर सकते। और, संतान सिद्ध करनेकी बात जाने दो। प्रथम तो तुमने ज्ञानको अस्वसंविदित माना है, सो तुम ज्ञानका स्वरूप भी सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि विशेषवादमें ज्ञानका स्वरूप अस्वसन्निहित माना गया है अर्थात् जो ज्ञान उत्पन्न हो रहा है वह अपने आपको नहीं जानता, फिर उस ज्ञानको जाननेके लिए दूसरा ज्ञान चाहिए। जैसे हम आप भी कभी कभी महसूस करते है कब, जबकि ज्ञानमें संदेह होता है। कोई चीज जाना, जैसे दूर पड़ा हुआ अभ्रकका कोई टुकड़ा ऐसा समझमें आया कि यह तो चाँदीका टुकड़ा मालूम होता है, फिर उसमें संशय हो गया कि यह पता नहीं कि चांदी है या अभ्रक? तो अब वह ज्ञान निर्बल पड़ गया, क्योंकि उस ज्ञानमें संशय आ गया। तो मेरा यह ज्ञान सही है क्या? यों उस ज्ञानकी ठिकाई जानने वाला एक दूसरा ज्ञान बनाना पड़ा ना? तो विशेषवादमें ज्ञानको अज्ञानरूप माना है अर्थात् ज्ञान स्वयं अपने आपकी समझ नहीं कर सकता। तो जब एक ज्ञानका स्वरूप बनानेके लिए दूसरे ज्ञानकी जरूरत पड़ी तो उसके लिए तीसरे ज्ञानकी जरूरत पड़ी, यों तो अनवस्था दोष हो जायगा। उससे फिर ज्ञान हीका सत्व सिद्ध नहीं हो सकता। फिर आप संतान किसकी बनाना चाहते?

गुणोच्छेद और संतानत्व दोनोंकी असिद्धि—इस प्रसङ्गमें मूल बात इतनी कही जा रही थी कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्द इनकी प्राप्ति हो जानेका नाम मोक्ष है। जो आत्मामें गुण हैं उनका पूरा विकास हो जानेका नाम मोक्ष है किन्तु एक वैशेषिक सिद्धान्तमें आत्मा और गुणको भिन्न भिन्न माना है। और सिद्धान्त है उनका कि ये सब गुण जब आत्मामें नष्ट हो जायेंगे तब आत्माका मोक्ष कहलाता है। तो आत्माके ज्ञानादिक गुणोंके उच्छेदमें ही मोक्ष मानने वाले वैशेषिक यहां अपना पक्ष रख रहे थे कि बुद्धि, सुख, आदिक गुणोंका उच्छेद हो जानेका नाम मोक्ष है, न कि ज्ञानकी प्राप्तिका नाम मोक्ष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। उसके निराकरणमें कह रहे हैं कि न तो ज्ञानकी सन्तान सिद्ध होती है न स्वरूप, फिर उच्छेदकी बात कहां लगाई जाय ? आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानके अतिरिक्त आत्मा अन्य कुछ चीज नहीं है। ज्ञानपर अभी आवरण है, रागद्वेष विषयकषाय कर्म आदिकका आवरण पड़ा है जिसके कारण ज्ञान प्रकट नहीं हो पाता। जब अंतरङ्ग और बहिरङ्ग समस्त प्रकारके आवरण दूर हो जाते हैं तो ज्ञानका परिपूर्ण विकास होता है, वे गुण असीम हैं। उनके विकाससे त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। देखो कहां तो मोक्षका ऐसा समृद्धिशाली स्वरूप कि अनन्त ज्ञान है, अनन्त आनन्द है, बहुत ही पावनस्वरूप है और कहां मोक्षका यह स्वरूप शङ्काकारके द्वारा कहा जा रहा है कि अरे, मोक्ष तो उसका नाम है जहां न ज्ञान रहता न आनन्द रहता न सुख-दुःख रहते न धर्म अधर्म रहते। कुछ भी जहाँ गुण नहीं रहते। आत्मा कोरा रह जाय, इसका नाम मोक्ष है। तो मोक्षके उस पूर्व निरूपित स्वरूपके खिलाफ यह स्वरूप रखा जा रहा है शङ्काकारके द्वारा कि आत्मा के समस्त गुण समाप्त हो जायें तो इसका नाम मोक्ष है। इस गुणोच्छेदके मंतव्यका यहाँ निराकरण किया जा रहा है।

द्रव्यसे प्रथक गुणोंके सत्त्वका अभाव--वस्तुतत्त्व ऐसा है कि कोई भी पदार्थ हो, है तो वह अनन्त गुणात्मक अर्थात् वस्तुके अनन्त गुण ही सब वस्तु कहलाता है अथवा पदार्थमें गुण नहीं है, पदार्थ तो पदार्थ ही है। उस पदार्थका स्वरूप समझनेके लिए उसमें जो उसके अनुरूप परिज्ञान किया गया कि यह गुण है, गुण तो भेद है. पर्याय अभेद है। गुण सदा रहता है पर्याय सदा नहीं रहती। यह तो अन्तर है पर जैसे पर्याय भेद है वैसे ही गुण भी भेद है। वस्तु तो एक स्वरूप अभेदात्मक है प्रत्येक पदार्थकी यह बात निरखलो ! अणु-अणु जीव आकाश आदिक समस्त सत् पदार्थोंकी यही बात है कि वे हैं और जैसे हैं वैसे ही हैं, इनको समझनेके लिए गुण भेद किये जाते हैं। जैसे आत्मा तो एक स्वरूप जैसा है वैसा ही है। आत्मा है और वह जो है सो है और प्रतिसमय जिस रूप परिणम रहा सो परिणम रहा है। अब हम उसे समझायें कैसे ? दूसरोंके द्वारा हम समझें कैसे ? ऐसा समझनेके लिये व्यवहार से उस अखण्ड अभेद पदार्थमें गुणके भेद बनाये हैं और पर्यायके भेद बनाये हैं। इससे यह सिद्ध है कि पदार्थ जुदी चीज नहीं है, गुण जुदी चीज नहीं है। अखण्ड पदार्थोंके समझनेके लिए जो उनकी शक्तियां बताई जाती हैं उनका नाम गुण है।

आत्मासे पृथक् ज्ञानादि गुणोंके सत्त्वका अभाव जैसे जिन्हें आत्माका अनुभव है, परिज्ञान है वे एक आत्मा इतने शब्द कहने हीसे पूरे आत्मपदार्थको लक्ष्य में ले लेते हैं कि आत्मा शब्दसे यह कहा गया है। और जिन्हें उसका परिचय ही नहीं है अथवा कुछ परिज्ञान भी है तो जो बारबार उसे भूलते हैं अथवा उसपर उपयोग जमता नहीं है। तो ऐसे लोगोंके लिए उस आत्माके सम्बन्धमें आत्माकी शक्तियोंकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चर्चा की जाती है। देखो ! जिसमें ज्ञान है वह आत्मा है, जिसमें दर्शन है. चारित्र है शक्ति है आनन्द है वह आत्मा है। पर आत्मा एक अलग सत् हो और उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदिक गुण कुछ अलग सत् हों। जैसे मटकेमें चने भर दिए तो चनोंका अलग तत्त्व है मटकाका अलग सत्त्व है, उन चनोंको मटकेसे अलग रख दिया। इसी प्रकार आत्मा कोई खाली चीज हो और उसमें ज्ञानादिक गुण भरे जाते हों ऐसी वस्तुव्यवस्था नहीं है। आत्मा ही ज्ञानादिक अनन्त गुणस्वरूप है। अब ऐसे आत्मामें जहाँ कि वस्तुतः अभेद है और समझनेके लिए व्यवहारसे भेद किया जाता है तो कुछ स्वरूप भेद बनाया गया तभी तो भेद बना। देखो ! ज्ञान आनन्द आदिक एक एक गुण हैं, वे धर्म हैं, उन गुणोंसे पृथक नहीं हैं, वे गुण स्वयं और गुण वाले नहीं हैं वे गुण इकाई हैं तब स्वरूपभेदसे लक्षणभेदसे गुणभेदसे अभेदरूप आत्मामें भी भेद किया गया है कि आत्मा समस्त गुणोंका पिण्ड है और उसमें अनन्त गुण रहते हैं, पर इतना व्यवहारके लिए उपकारी कथन होनेसे ऐसा नहीं माना जाना चाहिए कि ज्ञानादिक गुण पूरे स्वतन्त्र सत् हैं और आत्मा पूर्ण स्वतन्त्र सत् है। लेकिन विशेषवादमें यही माना जा रहा है। इसे कहते हैं भेदवाद !

भेदवाद और अभेदवादका सिद्धान्त—देखिये ! विशेषवादका सिद्धान्त है भेदवाद। और इसके विपरीत होता है अभेदवाद ! ये दोनों बातें एक दूसरेसे बिल्कुल उल्टी चल रही हैं। जैसे नित्यवाद और क्षणिकवाद ये दोनों एक दूसरेके उल्टे हैं। नित्यवादमें प्रत्येक पदार्थको सर्वथा नित्य बताया जाता है, अपरिणामी सदा रहने वाला। तो क्षणिकवादमें ऐसा क्षणिक बताया जाता कि द्रव्यसे तो निरंश जो एक एक अणु है सो द्रव्य है। उस अणुमें भी शक्तिके क्षण कर दिए गए। उनमें जो एक एकभाव है सो सत् है। उनमें भी परिणतियोंके क्षण कर दिए गए। जो एक एक परिणमन है सो पूरी चीज है। क्षणिकवादने क्षण-क्षण करनेकी, टुकड़े-टुकड़े करने की ठानी है तो नित्यवादने एक कूटस्थ अपरिणामी माननेकी ठानी है। तो यों ही समझिये कि अद्वैतवाद जब कि सारे विश्वको एक मानकर चल रहा। क्या हैं ये समस्त पदार्थ ? एक प्रश्न है अथवा एक अज्ञानाद्वैत है। ज्यादह किसीने हैरान किया कि कहां ये पदार्थ अद्वैत हैं ? पदार्थ देखो नाना हो ज्ञानमें देखो नाना झलकें उत्पन्न होती हैं तो वे कहते हैं कि रहो सब चित्र विचित्र किन्तु उनका जो एक प्रतिभास है चित्राद्वैत इस अद्वैतको नहीं छोड़ता, सबको एक मानता, यह अद्वैतवादकी हठ है। तो विशेषवादकी यह हठ है कि किसी भी पदार्थमें कुछ भी बात समझमें आये तो उसको स्वतंत्र सत् मानकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर देते। इन दोनों वादोंके समन्वयका प्रतीक है लोकप्रसिद्ध गणेशकी मूर्ति। जैसे लोग मानते हैं कि गणेशके सूंड लगी है और वे चूहेपर बैठते हैं, वाहन चूहा है। ऊपर सूंड अभेदरूपसे फिट है। वह किसी समयमें एक दार्शनिक प्रतीक होगा। जो इन दो तत्त्वोंपर दृष्टि डालता है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखो पदार्थ इस रूप है जैसे कि गणेशकी ऊपरी अवस्थामें वह सूंड जो मनुष्यसे विपरीत है या बाहरकी चीज है वह भी यहाँ ऐसी फिट अभेदरूप हो गई कि वहाँ कुछ भेद नहीं नजर आता। यह है एक अभेदवादका प्रतीक और वाहन चूहा यह भेदवाद का प्रतीक है। जैसे चूहा कहीं बजाजकी दुकानमें पहुँच जाय और कोई कपड़ा पाजाय तो उस कपड़ेके वह इतने छोटे-छोटे अंश कर डालता है कि जितने छोटे कैंचीसे भी टुकड़े करना सम्भव नहीं है।

विशेषवादमें एक ही पदार्थमें भेद करनेकी प्रकृति—विशेषवादकी प्रकृति है भेद करना। एक ही पदार्थ जो सर्व प्रकारसे समृद्ध है, परिपूर्ण है अभेद है, उसमें ही गुण समझमें आया, तो लो अजो गुणकी सत्ता अलग है। गुण इस आत्मामें फिर किये जाते हैं समवायसम्बन्धसे। यह आत्मा कुछ अगर परिणति कर रहा, समझमें आ रहा, राग किया द्वेष किया परिज्ञान किया, चेष्टाकी या किन्हीं पदार्थोंमें हलन चलन हो तो यह हलन चलन यह क्रिया यह चेष्टा ये कर्म ये स्वतंत्र सत् हैं, इतना तो पदार्थ में फिट कराया जाता है। और की तो बात जाने दो, सामान्य और विशेषको स्वतंत्र सत् मान लिया गया। अब बतलावो १०० मनुष्य बैठे हैं और इन सबमें मनुष्यत्व पाया जा रहा है तो यह मनुष्यत्व सामान्य एक तत्त्व बन गया। यह भी एक पदार्थ है लेकिन सामान्य या स्वरूप तो है, पदार्थ नहीं। पदार्थमें तो अर्थ क्रिया होती है, काम भी बनता है। दूध चाहिये ? तो गायके पास पहुंचते हैं तब दूध मिलता है, तो वह गाय विशेष है। कहीं गाय सामान्य से तो दूध नहीं मिल सकता वह गाय सामान्य तो एक विशेषनिष्ठ कल्पना है ? सदृशताका जो भाव है उसका नाम सामान्य है। कहीं काली पीली सफेद आदिक गाय जो एक पदार्थ है वह पदार्थ न हो तो दूध कहाँ से मिल सकेगा। विशेष वादियोंने तो अपना तंत्र ही यह बनाया है कि भेद करना। देखिये भेद करना भी एक हितका उपाय बन सकता है और अभेद मानना भी हितका उपाय बन सकता है। मगर सबमें उचित और अनुचित पनेकी बात होती ही है।

दृष्टिभेदसे ही भेद करनेका औचित्य—ऋजु सूत्र नयका और काम क्या है सिवाय भेद करनेके भेद करते जायें। पर्यायका भेद किया, मोटी पर्याय मानी उसमें सन्तोष नहीं हुआ। सूक्ष्म पर्याय माना, उसमें भी सन्तोष नहीं हुआ तो एक समय की पर्यायको बुद्धिमें लिया ज्ञानमें तो सब सामर्थ्य है। एक रागभाव आधा मिनट तक बराबर किया जा रहा है। भक्त ही हम आपकी समझमें इस रागका प्रभाव आधा मिनट किया जानेपर आया लेकिन ३० सेकेण्डमें प्रतिसेकेण्डमें ही तो राग परिणमन चल रहा और एक सेकेण्डमें जितने समय है, प्रतिसमय राग परिणमन चल रहा, पर अनुभाव्य राग जहां अनुभव किया जा सके वह एक समयके राग परिणमनकी बात नहीं है. वहां असंख्यात समय तक उपयोग जब उस रागमें होता है तब बनता है, लेकिन समय समयपर परिणमन न हो तो अन्तर्मुहूर्तमें भी परिणमनका रूप नहीं बन सकता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो ऋजुसूत्रनय एक समयके परिणमन पर दृष्टि डालना चाहता है जो कि शुद्धऋजुसूत्र है। यह शुद्ध ऋजुसूत्रनय शुद्ध पर्यायको एक परिणतिसे ध्यान दिलानेके लिए नहीं कहा जा रहा है शुद्ध हो अशुद्ध हो, कोई परिणमन हो, केवल एक समय के परिणमनपर दृष्टि दिलाये उसे शुद्ध ऋजुसूत्र कहते हैं। अब इसमें जो जाना गया वह निरंश जाना गया। देखिये एक निरंश होता है अभेद निरंश सबका एक अखण्ड रूप और एक निरंश होता है भेद करते करते जो ऐसा अन्तिम भेद जिसका भेद नहीं किया जा सकता है वह भी निरंश है और निरंशतत्त्वका परिज्ञान भी इस मोहभावको दूर करनेमें समर्थ हो सकता है। तो भेद करना अभेद करना सब ठीक है, किन्तु एक विशेष प्रमाणसे अविरुद्ध हो करके उनका भेद किया जाना चाहिये।

ज्ञानादिक गुणोंको आत्मासे पृथक सत् माननेपर गुण गुणीकी अव्यवस्था— प्रकरणमें यह चल रहा है कि मोक्षका स्वरूप तो सिद्धान्तमें यह बताया गया कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्द इनका विकास हो जाय, इस स्वरूपका लाभ हो जाय इसे मोक्ष कहते हैं। और सब स्वरूप ये सब गुण आत्माके अभिन्न गुण हैं। इस ही रूप आत्मा है इनका विकास हुआ अर्थात् आत्माका विकास हुआ, पर इस रूपमें न मानकर वेशेषिक सिद्धान्तवादी तो अपना पक्ष यह रख रहे है कि आत्माके गुणोंका नाश होनेका नाम मोक्ष है। ज्ञान, सुख, दुख, इच्छा आदिक जो भी गुण हैं, समस्त गुणोंका अभाव हो जाय, ये गुण आत्मासे निकल जायें, आत्मा कोरा रह जाय उसका नाम मोक्ष है। उसीके उत्तरमें यह कहा गया है कि देखो अगर आत्मा न्यारा है और ज्ञानादिक न्यारे हैं तो पहिले तो यह ही व्यवस्था नहीं बन सकती कि यह ज्ञान आत्मामें जुड़ जाय! अगर कोई सम्बन्ध भी मानते समवायसे जुड़ जायगा ज्ञान आत्मामें, तो यह ज्ञान आत्मामें ही क्यों जुड़ता है, आकाश वगैरहमें क्यों नहीं जुड़ जाता है? जब स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं ये सब तो उसमें यह द्विविधा क्यों हुई?

अस्वसंविदित और अचेतन ज्ञानकी सिद्धि न होनेसे संतानत्व हेतुका असिद्धहेत्वाभासपना— गुणोच्छेदरूप मोक्षके प्रसङ्गमें अब देखिये! दूसरी बात ज्ञान स्वयं अपनेको नहीं जानता, ऐसा शङ्काकार मानता है। ज्ञानको जाननेके लिए दूसरा ज्ञान चाहिए, तब उसे जाननेके लिए तीसरा ज्ञान चाहिये। जब प्रकट ज्ञान ही नहीं बन पाया तो ज्ञानोंकी संतान बताना ये सब बातें भी असङ्गत हो जायेंगी। तीसरी बात संतान स्वयं ज्ञानरूप है या अज्ञानरूप? आत्मामें ज्ञानके बाद ज्ञान, ज्ञानके बाद ज्ञान यह तो चलता रहता है, अथवा यह ज्ञानकी परम्परा चल रही है, सो यहाँ जो तुमने संतान माना है वह संतान खुद ज्ञानरूप है या अज्ञानरूप? ज्ञानरूप तो माना ही नहीं है, ज्ञानरूप तो ज्ञान है। विशेषवादमें जितने शब्द हैं, जितने स्वरूप हैं, जितनी समझ है, उतने ही स्वतन्त्र पदार्थ हैं? इस अज्ञानरूप संतानका सत्त्व ही सिद्ध नहीं होता। वह किसरूप है संतान, क्या आकार रखता है? उसका कोई स्वरूप न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होनेसे संतान सिद्ध नहीं होता। और संतानत्व हेतु देते, इस कारण असिद्ध हेतु है, तुमने यह हेतु दिया था कि ज्ञान सुख दुःख आदिकके बिल्कुल नष्ट होनेका नाम मोक्ष है, और ये सब गुण कभी बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं क्योंकि संतान होनेसे। तो गुणोच्छेद साध्यका बनाया हेतु संतानत्व, तो संतानत्व बना हेतु और गुणोंका उच्छेद बना साध्य। लेकिन यह हेतु ही सिद्ध नही होरहा है अतः यह अनुमान सही नहीं है।

विकृत गुणोंके उच्छेदकी मोहस्वरूपमें अविरुद्धता—आत्मा स्वयं ज्ञानमय है। जिन्हें हम ज्ञान कहते हैं जो मोटेरूपसे समझमें आते हैं वे ज्ञान ज्ञानके वास्तविक स्वरूप नहीं हैं। जैसे विकल्प विचार चिन्ता शोक इनमें जिस प्रकारका ज्ञान चलता है ये ज्ञान ज्ञानके विशुद्ध स्वरूप नहीं हैं, ये तो रागद्वेष ममता आदिककी बनावटसे ज्ञानका काल्पनिकरूप बन गया है। यदि इस ही ज्ञानके विनाशका नाम मोक्ष कहते हो तब तो कोई आपत्ति नही। ये क्षायोपशमिक ज्ञान, छुटपुट ज्ञान ये आत्मामें न रहें उसका नाम मोक्ष है यह ठीक बात है। यदि आकुलताके जनक ऐसे ही ज्ञान बने रहें तो वहाँ मोक्ष कैसे होता है? लेकिन इन विकल्पात्मक खोटे ज्ञानोंसे परे कोई एक ज्ञानरूप है जहां केवल जाननहार स्थिति रहती है, जहां रागद्वेष आदिक कोई तरङ्ग नहीं उठती है, ऐसा जो ज्ञानका सहज विलास है उस विलासमें ज्ञानको नहीं परखा गया।

आत्मगुणोच्छेदसे आत्मोच्छेदका प्रसंग—शंकाकारका मन्तव्य है कि ज्ञानादिक गुणोंके उच्छेदका नाम मोक्ष है अच्छा तो बताओ, वे गुण आत्मासे भिन्न हैं या अभिन्न? उन ज्ञानादिक गुणोंको आत्मासे भिन्न माननेपर न तो संतान बनती है, न सम्बंध जुड़ता और न कोई व्यवस्था बनती तब यदि उन गुणोंको आत्मासे अभिन्न मान लोगे कि गुण वे सब ज्ञानादिक आत्मामें अभिन्न हैं। तन्मय हैं एकरूप हैं। तो इसका अर्थ यह हुआ कि जब ज्ञानादिक गुणोंका उच्छेद हुआ तो आत्माका नाश हो गया, क्योंकि अब आत्माको ज्ञानसे अभिन्न माना और फिर ज्ञानका उच्छेद माना तो जो आत्माका ही उच्छेद कहलाया फिर मोक्ष किसका हुआ? कथंचित् भेद मानो, अभेद मानो तब तो व्यवस्था बन सकती है, पर यह कथंचिद्वाद वैशेषिकोंने नहीं माना है।

स्याद्वादके स्वरूपका दिग्दर्शन—कथंचिद्वाद कहो, स्याद्वाद कहो एक ही प्रयोजन है स्याद्वादका रूप क्या है जो कि जैन दर्शनके तत्त्व का मूल साधन है। स्याद्वाद मायने अपेक्षावाद। अपेक्षा रखकर निर्णयकी बात कहना स्याद्वाद है। जैसे कि जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य ही है पर्यायदृष्टिसे अनित्य ही है। इसमें एक बात विशेष जाननेकी है। स्याद्वाद निर्णयवाद है संशयवाद नहीं है। यद्यपि एक मोटेरूपसे अपेक्षाको अन्तर्ज्ञान करकेभले ही भी, लगा देते हैं, जीव नित्य भी है जीव अनित्य भी है, मगर भी शब्द संशयवादका भी प्रतीक है बहुत सीमामें और "ही" निर्णयवादका ही प्रतीक है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्याद्वादके प्रयोगमें महर्षियोंकी प्रक्रिया 'भी' लगानेकी नहीं रही। यह तो उसका भाव समझकर हम सरलतासे उसे बतलानेके लिए भी का प्रयोग करते हैं। 'स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव, स्यान्नित्यमेव स्यादनित्यमेव।' इस प्रकार एव लगा लगाकर प्रयोग है। जैसे किसी एक युवकका परिचय लेना था तो परिचय देने वाला जैसे कोई नाम रखलो मोहन सोहन और रोहन। यहां सोहन युवकका परिचय देना है। सोहनका पिता है मोहन और पुत्र है रोहन। तो कोई इस प्रकार तो नहीं कहता कि सोहन मोहनका पुत्र भी है. है पुत्र, पर भी लगानेका भाव हुआ कि और कुछ भी है। याने सोहन मोहनका पुत्र भी है। ऐसा कहने में तो वह गाली समझेगा। क्योंकि उसका भाव है कि सोहन मोहनका पिता भी होगा तो अपेक्षा लगाकर दृष्टि लगाकर धर्म बतानेके साथ लगाद गलत हो जाता है। वहा 'ही' का प्रयोग चलता है। जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य ही है। और कोई यों कह बैठे कि जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य भी है। तो नित्य है यद्यपि लेकिन भी लगानेसे गलत हो गया याने द्रव्यदृष्टिसे वह अनित्य भी होता होगा? वहां निर्णय नहीं आया। स्याद्वादमें निर्णय पड़ा हुआ है कि यह इस दृष्टिसे ऐसा ही है। जीव पर्यायदृष्टिसे अनित्य ही है, स्याद्वादमें निर्णय पड़ा हुआ है एकदृष्टिकी स्पष्टता बनाई गई है। किसी भी पदार्थको परिपूर्ण जाननेके लिए हमें अपेक्षा चाहिए। इस बेंचके बारेमें कोई परिचय दे तो कोई कहेगा कि यह बेंच ५ फिट लम्बी है, कोई कहेगा कि यह १ फुट ऊँची है तो कोई कहेगा कि यह १५ इंच चौड़ी है। तो यद्यपि ये सभी बातें सही हैं ५ फिट लम्बी लम्बाईकी अपेक्षासे है, १ फुट ऊँचाईकी अपेक्षासे है और १५ इंच चौड़ाईकी अपेक्षासे है। मगर कोई कहे कि लम्बाईकी दृष्टिसे यह बेंच ५ फिट भी है तो उसका यह कहना गलत है। वहां 'ही' आयगा। लम्बाईकी अपेक्षासे यह चौकी ५ फिट ही है, ऐसा कहनेमें अपेक्षाका स्पष्ट बोध होगा। जब अपेक्षासे वस्तुको निरख रहे हैं तो वहा संशयका क्या काम? निर्णय ही वहां पड़ा हुआ है। तो वस्तुस्वरूपके तत्त्वपरिचयका साधन एक स्याद्वाद है।

स्याद्वादका उपकार—यदि यह स्याद्वाद न होता तो हम लोग तत्वज्ञान ही क्या करते? तत्वज्ञानकी बात तो जाने दो, व्यवहारका भी काम नहीं चल सकता था, हम जीवित भी न रह सकते थे। ये सभी काम स्याद्वादके प्रसादसे हो रहे हैं। चाहे व्यापार हो, रोजिगार हो, खाने-पीने पहिनने ओढ़ने आदिके कार्य हों, सभी जगह स्याद्वादका प्रयोग कर रहे हैं, फिर भी उसीका निषेध कर रहे हैं तो यह उन नास्तिकों जैसी बात है जो कहते कि आत्मा नहीं है, जो समझ रहा है वह आत्मा नहीं है क्या? वह समझने वाला है क्या? समझने वाला होकर भी अपनी समझका निषेध करे, उस प्रकारकी यह बात है। हां, यह आखिरी बात है कि स्याद्वादसे पदार्थ का निर्णय करके फिर उसमें हेय बुद्धिका परिज्ञान किया जाता। हा, पर्यायदृष्टिसे यह जीव अनित्य है द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर उस अनित्यको उपयोगमें रखनेसे हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता इसलिए उस अनित्य विषयको छोड़िए और इस नित्य ध्रुव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वभावका आश्रय कीजिए। तो अभी निश्चयका विकल्प पकड़ लिया, इसके बाद फिर एक स्थिति ऐसी आती है कि जहां न छोड़नेकी बात रहती न ग्रहणके विकल्पकी बात रहती, किन्तु एक विशुद्ध आत्मानुभव रहता है, ज्ञानानुभव रहता है। तो वह अनुभव साध्य है और उसके निकट यह भेद साधन है तो उसका उपयोग करनेकी बात जिन अवस्थामें होती है वह तो होती है, परन्तु स्याद्वादके बिना नही होपाती। मोह छोड़ो किनसे मोह छोड़ें ? इन परिवारजनोंसे मोह छोड़ो ! कैसे छोड़ें ? यथार्थ बात जान लो कि इन परिवार जनोंके मायने क्या ? इन परिवारजनोंके मायने है शरीरसे मोह छोड़ दो। यह शरीर जीव, कर्म और शरीर इन तीनका समूह है, अनन्त अणुवोंका पुञ्ज यह शरीर है और कर्म उससे भी अनन्तगुणे अणुवोंका पुञ्ज है, और उनके बीच पड़ा हुआ यह जीव एक है। जिसे हम आप अहं अहं इस प्रत्ययसे बोध करते हैं तो यह जीव, कर्म और शरीर इन तीन चीजोंका समूह है। तो इनमेंसे जीव तत्त्वसे तो कोई मोह करता नहीं। वह तो अमूर्त है। यदि उस जीवतत्त्वसे कोई मोह कर बैठे तो उसे मोह करनेका होश ही न रहेगा अर्थात् उसकी बेहोशी मिट जायगी। उसके तो तत्वज्ञान जग जायेगा। कर्मोंसे भी कोई मोह नहीं करता, उनका तो कोई खयाल भी नही करता। और इस शरीरसे भी कोई मोह नहीं करता, क्योंकि इस शरीरसे जब जीव बाहर निकल जाता है तो लोग निःशंक होकर उसे जला देते हैं। उससे फिर कोई प्रीति करता है क्या ? तो मोह करना कुछ व्यर्थसा लगने लगा। ये सब ऐसी युक्तियां इस स्याद्वादसे अपने आप मिल जाती हैं। तो तत्वज्ञानका मूल साधन है यह स्याद्वाद !

जैनदर्शनमें महत्त्वपूर्ण मूल उपाय—कोई पूछे अथवा खुद ही कोई मनमें यह शङ्का लाये कि ऐसी कौनसी बात है जैनदर्शनमें जो अन्यत्र हमें प्राप्त नहीं होती ? पापोंका त्याग करो ! यह बात तो सब जगह सुननेको मिलती है, दूसरोंको अपना जैसा मानो, ऐसा सब जगह सुननेको मिलता है। नियम संयमसे रहो, तपश्चरण करो ऐसा सभी जगह सुननेको मिलता है। भले ही एके मूल प्रकाशके पाये बिना उन सब बातोंमें अन्तर है लेकिन मोटेरूपमें तो सभी जगह यह बात मिलती है, उपदेश होते हैं, खास बात वह कौनसी है जो हमें यही (जैनदर्शनमें) प्राप्त होती है ? तो वह खास बात है—तत्वज्ञान करनेका जो उपाय है वह जैनदर्शनमें सही बताया गया है और जिसके बलपर फिर निर्णय होनेपर पाप छोड़े उसमें भी विशेषता आती है, नियम पाले उसमें भी विशेषता आती है। जब उद्देश्य एक सही बन जाता है और तत्वस्वरूप एक दृष्टिमें आ जाता है तब समझिये कि हमारे व्रत नियम, संयम, त्याग आदि में एक सहीपन (यथार्थता) आ जाता है। तो हमारा कर्तव्य है यह कि ऐसी बुद्धिको प्राप्त करके ऐसे शासन समागमको प्राप्त करके हम इस ओर विशेष ध्यान दें कि हम वस्तुस्वरूपका ज्ञान करें कि वास्तविक तत्व क्या है ? मैं क्या हूँ ? विश्व क्या है ? समागम क्या है ? यह ज्ञानप्रकाश होगा तो मोह दूर होगा, भीतरमें एक विशिष्ट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आनन्दका अनुभव होगा और संसारके सङ्कटोंसे सदाके लिए छूट जायेंगे।

संतानत्व हेतुमें परसामान्यरूप व अपरसामान्यरूपका विकल्प - ज्ञानादिक गुणोंके उच्छेदका नाम मोक्ष है इसकी सिद्धिमें जो संतानत्व हेतु दिया है कि संतानपना होनेके कारण ज्ञानादिक गुणोंका अभाव हो जाता है तो यह संतानत्व हेतु सामान्यरूप है या विशेषरूप ? याने सामान्य संतानपना या विशेष संतानपना ? इन दोमेंसे कौनसा संतानपना हेतु है ? यदि कहो कि सामान्यरूप संतानका हेतु है तो सामान्य दो प्रकारके हुआ करते हैं—परसामान्य और अपरसामान्य। परसामान्य उसे कहते हैं जिससे और व्यापी कोई सामान्य न हो। जैसे मनुष्य सामान्यको कहा तो मनुष्य सामान्यमें मनुष्य आ गए मगर कुछ और बच गए। जैसे –पशु पक्षी ! तो अभी यहांपर सामान्य नहीं हो सका, परसामान्य वह कहलाता है कि जिससे बढ़कर जिससे व्यापी और सामान्य न हो। जब कहना चाहें जीवसामान्यको तो जीवसामान्य कहनेपर जीव जीव तो सब आ गए मगर अजीव पदार्थ नहीं आये। तो यह भी परसामान्य नहीं रहा। जब कहो सत् सामान्य तो इसमें सब आ गये, कोई नही बचा। तो यह कहलाया परसामान्य और परसामान्यके भेद करके किसी भी भेदको सामान्य रूपसे बोला जाय उसका नाम है अपरसामान्य ! जैसे—सत्के दो भेद किए हैं—जीव और अजीव। अब उनमें जीवसामान्य बोलोगे तो वह अपरसामान्य है। तो संतानपना हेतु जो कहा है वह परसामान्यरूपसे है या अपरसामान्यरूपसे ? ये दो विकल्प रखे।

परसामान्यरूप संतानत्वहेतुमें अनैकान्तिक दोष – यदि कहो कि संतानपना परसामान्यरूप है तो उसका मतलब यही तो हुआ ना कि परसामान्यरूप संतानपना होनेसे ज्ञानादिक गुणोंका उच्छेद हो जाता है। जो जो परसामान्यरूप संतान हो उसका नाश हो जाता है। यह उसकी व्याप्ति बनी, तो जैसे आकाश है वह परसामान्यरूप संतान है। समझमें आता है ना, कि आकाशके एक स्थानके बाद दूसरा स्थान लगा, प्रदेशोंकी संतान बराबर चल रही है। एक प्रदेशके बाद दूसरा, दूसरेके बाद तीसरा है, इस तरह प्रदेशोंकी संतान बराबर चल रही है अथवा आकाश पहिले था अब भी है आगे भी रहेगा। तीन कालकी अपेक्षा भी संतान है लेकिन आकाशका कभी उच्छेद होता है क्या ? तो परसामान्यरूप संतानपना हेतु रखकर भी आकाशमें साध्य नही रहा अर्थात् उच्छेदरूप साध्य नही रहा। तो यह हेतु अनेकान्तिक हो गया, क्योंकि आकाशका अन्त उच्छेद न होनेपर भी संतानत्व हेतु वहाँ बराबर रहता है। फिर दूसरी बात यह है कि संतानत्व हेतु परसामान्यरूप माना है तो परसामान्यरूपका प्रयोग है सत् सामान्यरूप। तो संतानत्वमें माना ना, संतानरूप; तो संतानत्वमें यदि सत् सामान्यपना माना है तो वहाँ सत् सत् इस प्रकारका ही ज्ञान होना चाहिये। संतान संतान इस तरहके ज्ञानका ही वह कारण होना चाहिये। यह नहीं कि संतानत्वके ज्ञानका कारण हो जाय ! तो इससे परसामान्यरूप संतानपना हेतु है, यह बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिद्ध नहीं होती।

अपरसामान्यरूप संतानत्व हेतु माननेपर दृष्टान्तकी साधनविकलता—यदि कहो कि अपर सामान्यरूप संतानत्व हेतु है अर्थात् विशेषगुणका आश्रय रखने वाला एक जातिरूप संतानपना हेतु है तो हेतु तो बन गया किसी विशेष गुणात्मक जातिरूप। तो वह हेतु तुम्हारे कल्पित पक्षमें रहे तो रहा आये, परन्तु किसी दृष्टान्तमें रह नहीं सकता, क्योंकि विशेष गुणात्मक संतानपना हेतु माना है। तो जिस गुणरूप संतानत्व ज्ञानादिक गुणके उच्छेदमें हो सकते हैं उस गुणरूप संतानत्व हेतु प्रदीपमें कैसे होगा ? प्रदीपमें अन्य गुणरूप संतानपना है, तो जब दृष्टान्तमें हेतु नहीं रह सकता तो दृष्टान्त साधनविकल हो गया। जो दृष्टान्त दिया गया उसमें साध्य तो तुम मान रहे क्योंकि साध्य होता है इष्ट। सो तुम्हारा इष्ट है ही पर साधन तो वादी प्रतिवादी दोनोंके द्वारा सम्मत होता है। तो यहां संतानपना कहा है प्रदीपमें। तो साधन नहीं रहा, इस कारण अपरसामान्यरूप भी संतानपना हेतु युक्त नहीं है।

सामान्यरूप संतानत्वका गुणादिकमें सम्बन्धका अनियम—तीसरी बात यह है कि संतानत्व चाहे परसामान्यरूप हो चाहे अपर सामान्यरूप हो, सामान्य तो द्रव्यसे भिन्न माना गया है वैशेषिकसिद्धान्तमें, क्योंकि विशेषवादमें ६ प्रकारके पदार्थ हैं और वे सभी सत् हैं, स्वतन्त्र हैं। वे छः कौन हैं ? द्रव्य गुण, क्रिया अर्थात् पर्याय, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। तो सामान्य एक स्वतन्त्र सत् है, तो वह हो गया भिन्न ज्ञानादिक गुणोंसे तो उस भिन्न पर सामान्यका अथवा अपरसामान्यका गुणमें सम्बन्ध कैसे बन गया, जो सर्वथा भिन्न होता है उसका सम्बंध नहीं बन सकता। यदि समवाय सम्बंधसे सम्बन्ध जोड़नेकी टेक रखो तो इसका उत्तर दो कि यह परसामान्य ज्ञानमें ही क्यों लगा अन्य सतमें क्यों नहीं लगा ? तो सर्वथा भिन्न पदार्थका समवाय सम्बन्ध नहीं हो सकता है। और समवायका स्वरूप भी कुछ नहीं। समवाय क्या चीज है। जैसे जीव है, भौतिक पदार्थ है इस तरह समवाय भी क्या कोई सत स्वरूप है। उसका क्या आकार है क्या गुण है यह सब कुछ भी नहीं सिद्ध होता। सो संतानत्वहेतु सामान्यरूप होकर ज्ञानादिक गुणोंके उच्छेदरूप साध्यको सिद्ध करना यह तो बात असंगत रही।

विशेषरूप संतानत्वहेतुके दो विकल्प—यदि कहो कि संतानत्व हेतु विशेष रूप है तो विशेषरूप होते हैं दो प्रकारके। विशेषरूपकी संतान होनेका अर्थ यह हुआ ना कि विशेष के बाद फिर विशेष फिर विशेष इस तरह विशेष के बाद विशेष लगातार चल रहे हो तो उसके मायने है कि विशेषरूप संतान हुआ तो वह विशेषरूप क्या है ? संतान जो विशेषरूप आ सकते हैं वे दो प्रकारके हो सकते हैं एक तो उपादान उपादेय रूप और दूसरा पूर्वापर/पहिले और आगे समान जाति वाला सत निरन्तर चलता रहे यों समान जातीय सत्का प्रवाह चले इसको भी संतान कह सकते हैं। तो संतानके इन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दो प्रकारोंमेंसे तुम्हारा विशेषरूप संतानपना किस प्रकारका है ? जैसे दृष्टान्तमें देखो बीजसे वृक्ष हुआ वृक्षसे बीज हुआ तो यह संतान है उपादान उपादेयभूत। बीजसे वृक्ष हुआ तो बीज तो है उपादान और उपादेय है वृक्ष। जब वृक्षसे बीज हुआ तो वृक्ष है उपादान और बीज है उपादेय। तो एक संतान उपादान उपादेय रूप चलती है। जैसे घड़ा बना तो मृतपिन्ड है उपादान। तो जब आपकी जो अवस्था है वह है उपादेय फिर तो जब उसके बाद जो दशा बनी उसमें भी उपादान उपादेय है। तो उपादान उपादेय भूत ज्ञानादिक लक्षण वाला आपका विशेषरूप सामान्य है अथवा पूर्वापर समान जातीय सत्के प्रवाह रूप आपका यह संतान है। जैसे पानी बह रहा है तो जो जल बहा उसके आगे जो जल बहा वह सब समान जातीय बह रहा है। उसे भी संतान कहते हैं। उसमें उपादान उपादेय तो कुछ है नहीं। समान जातीय जीव पिण्ड है और वह लगातार धारामें चल रहा है उसे भी संतान कहते हैं। तो संतानके इन दो प्रकारोंमेंसे तुम्हारा कौन सा प्रकार है इस तरह यहाँ ये दो विकल्प किये गये।

उपादानोपादेयभूतगुणक्षणविशेषरूप संतानत्व हेतुकी सदोषता - मोक्षका गुणोच्छेद स्वरूप सिद्ध करनेके लिए जो संतानत्व हेतु दिया है वह संतानत्व सामान्य रूप तो बना नहीं। विशेषरूप माननेपर ये दो विकल्प किए गये। क्या उपादान उपादेय भूत बुद्धि आदिक रूप वह संतानत्व है या पूर्वापर समान जातीय पर्यायके प्रवाह रूप वह संतानत्व है। यदि कहो कि उपादान उपादेयभूत ज्ञानदिकरूप जो पर्याय है, उस विशेषताको लिए हुए संतानत्व हेतु यहां अभीष्ट है तो ऐसे संतानत्वहेतुमें असाधारण अनैकांतिकपनेका दोष आता है, क्योंकि ऐसा संतानत्व हेतु दृष्टान्तमें नहीं पाया जाता। प्रदीप दृष्टान्तमें दृष्टान्तपना बनाने की दो किस्में हो सकती हैं एक तो उस ही दीपकमें जो पूर्वापर ज्वलन चलता रहता है उसमें संतान समझना और एक दीपकसे दूसरा दीपक जलाया जाये, उससे तीसरा दीपक जलाया जाय यों भी संतानपना दीपकमें माना जा सकता है। तो दीपकसे दीपक जलते रहे ऐसा जो संतानत्व है उसमें उपादान उपादेय भूत संतानपना नहीं पाया जाता तथा विशेषवादका उपादानोपादेय रूप संतानत्व भी नहीं हो सकता दूसरी बात यह है कि इसमें तुम्हारे ही सिद्धान्तसे विरोध आता है क्योंकि शंकाकार ने खुद ऐसा नहीं माना कि पूर्वज्ञान तो उपादान होता है और अपर ज्ञान उपादेय होता हो, क्यों नहीं माना ऐसा ? कि यदि यह शंकाकार यों मान बैठता है कि पूर्वज्ञान तो उपादान होता है और पश्चात होने वाला ज्ञान उपादेय होता है तो मुक्त अवस्थामें भी पूर्व पूर्वज्ञान उपादान बनने के कारण और उत्तर उत्तरज्ञान उपादेय बनते चले जायेंगे तो मुक्त होनेपर भी ज्ञानके संतानका उच्छेद नहीं हो सकता। और ज्ञान संतानके उच्छेद कोही मोक्ष कहा जारहा है। इससे इस प्रकारका विशेषरूप संतान बना न शंकाकारने माना है और न बनता है। वैसे देखा जाय तो संतानत्वका यह अर्थ बहुत अच्छा है कि पूर्वक्षण उपादान बने और दूसरा क्षण उपादेय बने। इस तरह उपादान उपादेय बन बनकर वह चलता रहे यह संतानपना बहुत युक्त जचता है, जैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज, तो यह संतानत्व रहे लेकिन ऐसा संतानपना मान लेनेसे मुक्त होनेपर भी यह संतान चलता रहेगा। जब अन्तिम ज्ञान उपादानरूप है तो वह अन्तिम कैसे रहा ? उसके आगे अन्य ज्ञान बनेगा तो ज्ञानसे ज्ञान उत्पन्न होते चले जायेंगे ज्ञानका उच्छेद नहीं हो सकता।

पूर्वापरसमानजातीयक्षणप्रवाहमय विशेषरूप संतानत्व हेतुकी सदोषता—यदि यह कहोगे कि हम विशेषरूप सामान्यका अर्थ यह करते हैं कि पूर्व और उत्तर कालमें जो समान जातीय प्रवाह चल रहा है। जैसे किसी पदार्थमें रूप है। अब उस रूपके बाद इस ही प्रकारका रूप चल रहा है। कोई पदार्थ पीला है तो पीला पीला निरन्तर बन रहा है ना तो समान जातीय पर्यायका प्रवाह होना इसका नाम संतान है तो ऐसा संतान माननेपर तो प्रमाणुके रूप आदिकके साथ अनैकान्तिक हो जायगा, अर्थात् ऐसा संतान परमाणुके रूप गंध रस आदिकमें मिल गया उस ही प्रकारके रूपके बाद अन्य रूप होते जाये, गंध होते जायें, ऐसी इन परिणतियोंकी परम्परा रूप संतान परमाणु में तो मिल गयी पर उसका उच्छेद नहीं होता। तो साधन होने पर भी साध्य न हो तो उसे अनैकांतिक दोष कहते हैं। तो इस प्रकार यह संतानत्वहेतु ही असिद्ध है। असिद्ध दो प्रकारके होते हैं एक स्वरूपासिद्ध और दूसरा आश्रयासिद्ध। जिसका स्वरूप ही सिद्ध न हो उसे स्वरूपासिद्ध कहते हैं और जिसका स्वरूप तो सिद्ध हो पर हेतु पक्षमें न पाया जाय उसे आश्रयासिद्ध कहते हैं। अब देखिये स्वतंत्र सत् गुणोंकी संतान क्या चीज होती है गुणोंमें संतान भी नहीं पाया जा रहा है तो यह हेतु असिद्ध दोषसे दूषित हो जाता है।

भेदवादमें सन्तानकी असंगतता—यह संतानत्व हेतु घटित भी न हो सकेगा विशेषवादमें कि पूर्वक्षण कारण हो उत्तरक्षण कार्य हो, क्योंकि संतानपना तो वहां ही सम्भव है जहाँ वस्तु नित्यनित्यात्मक हो। कार्यकारणभाव न एकान्त नित्यमें बन सकता न अनित्यमें सर्वथा नित्य या अनित्यमें उसकी अर्थक्रिया सम्भव नहीं इस कारण संतानत्व हेतु देकरके गुणोच्छेद रूप मोक्षको सिद्ध करकेकी बात असंगत है। जिस मन्तव्यमें प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र सत् है, प्रत्येक गुण स्वतंत्र सत् हैं। प्रत्येक कर्म (क्रिया) अर्थात् विविध परिणतियाँ स्वतंत्र सत् हैं, सामान्य भी स्वतंत्र सत् है, विशेष भी स्वतंत्र सत् है वहाँ न तो कार्यकारणभाव बन सकता और न उनमें प्रवाहरूप संतानत्व बन सकता है। जितने भी सत् हैं वे स्वतत्र ही हुआ करते हैं। कोई भी सत् अपने सत्त्व के लिये परकी अपेक्षा नहीं कर सकता है। सत् स्वतः सिद्ध होते हैं। स्वसहाय होते हैं। अतः किसी भी सत् किसी अन्य सत्के साथ संतानत्व जोड़ना असंगत है। लोकव्यवहार में जो सन्तान कहा करते हैं वहाँ निमित्तनैमित्तिकभावकी विशेषता दिखानेका प्रयोजन है। और फिर आत्माचरूप ज्ञान गुणका उच्छेद बतानेके लिये सन्तानत्व हेतु देना तो संगत ही कैसे हो सकता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोक्षकी आत्महितरूपता – आत्माका हित मोक्षमें है अर्थात् संसारके समस्त सङ्कटोंसे छूट जानेमें ही आत्माकी भलाई है। और चाहते हैं सभी लोग यही कि सब सङ्कटोंसे मुक्ति मिले तथा उपाय भी जितने करते हैं इसीका करते हैं कि सङ्कटोंसे छुटकारा हो। लेकिन मूलमें यह फर्क आ गया है उपायमें कि सङ्कट मान लिया है किसी और ही बातको! सङ्कट तो हैं उनके विकल्प भी, पर उसके अलावा और भी सङ्कट हैं। जो मूल संकट है उसकी पहिचान नहीं हुई इसलिए न तो संकट मेटनेका सच्चा उपाय बना पा रहे हैं और न संकटसे ही छूट पा रहे हैं। लोगोंने संकट इसमें मान रखा है कि धन कम हो गया, किसी इष्टका वियोग हो गया, शरीरमें रोग हो गया, किसीने अपमान कर दिया आदि। पर ये कोई भी इस जीवको संकट नहीं हैं। जीव तो अमूर्त है, उससे इन सब बाहरी चीजोंका कोई सम्बन्ध नही है। यहाँ तक कि जिस शरीरमें यह जीव बंध रहा है इस शरीरसे भी यह जीव बिल्कुल पृथक है। शरीर शरीर ही है, जीव जीव ही है। शरीरमें कोई रोग हो गया, किसीने अपमान कर दिया, धन कम होगया आदिक किसी भी चीजसे इस जीवका कुछ सम्बन्ध नहीं है। तो इन बाहरी चीजोंसे जीवपर संकट मानना यह तो मूढ़ताभरी बात है। इसी तरह इन बाहरी पदार्थोंसे अगर अपना सम्मान अपमान समझे तो यह भी मूढ़ता भरी बात है। तो लोगोंने बाहरी बातोंसे तो इस जीवपर संकट माना पर जीवपर जो मूल संकट है उसकी कुछ खबर नहीं की। इस कारण संकटोंसे छूटनेके उपायमें श्रम करके भी संकटोंसे छूट नहीं पाते।

जीवपर मूल संकट—मूल संकट जीवपर यह है कि जीव तो जीव है। परमात्मस्वरूप है, ज्ञानानन्द मूर्ति है, यहाँ किसी प्रकारका उपद्रव नही, लेकिन इस जीवके साथ कुछ दूसरी उपाधि लग बैठी, यह उपाधिका लगना ही इस जीवपर बड़ा संकट है। यह उपाधि क्या लग गयी? वह पहिली (दृश्यमान होनेके कारण पहिली उपाधि) उपाधि है शरीर! भव भवमें इस शरीरकी विडम्बना जीवके साथ लगी हुई है। दूसरी उपाधि है कर्मकी। कर्म साथ लगे हैं, उन प्रकृतियोंके उदयमें यह जीव नाना रागद्वेष विभाव मचाता है। इसका जो ज्ञानस्वरुप है, वह भी विकसित नहीं हो पा रहा है, अशान्ति ही छा रही है। तो ये सब बातें सङ्कटकी इस जीवपर लगी हैं। इन सङ्कटोंसे छूटना है। इसका अर्थ यह है कि शरीर अलग हो, कर्म भी अलग हों तो सङ्कट दूर हो। और सङ्कट लगा है तीसरा भीतरी जो एकदम साक्षात् सङ्कट है, वह है रागद्वेष मोह आदिक भाव उत्पन्न होनेका। रागद्वेष छाये हैं, इन सङ्कटोंसे हमें दूर होना है। यदि ऐसा भाव बने तो उसका यह अर्थ लगाना चाहिये कि हमें राग-द्वेष मोह भावोंसे दूर होना है।

सकल संकटोंसे मुक्त होनेमें मोक्षस्वरूपता—जब ये सङ्कट छूट जाते हैं, रागद्वेषमोहभाव दूर हो जाते हैं, शरीर भी दूर हो जाता है, कर्म भी विदा हो जाते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उस समय यह जीव केवल जीव रहता है। इसके साथ दूसरा कोई अजीव पदार्थ अब नहीं लगा हुआ है, ऐसा जब केवल जीव रह जाता है तो उस समय इसकी क्या स्थिति होती है ? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्दरूप विकास हो जाता है। इसे निषेधरूपसे यों कहो कि शरीर, कर्म, रागद्वेष इन तीन प्रकारके कर्मोंका विनाश होना इसका नाम मोक्ष है। इस मोक्ष अवस्थामें ही जीवका हित है। मोक्ष अवस्थामें अपने ही स्वरूपका लाभ है अर्थात् खुद पूर्ण विकसित हो जाय, इसीका नाम मोक्ष है।

गुणोच्छेदरूप मोक्षस्वरूपपर विचार—मोक्षका अनन्तचतुष्टय लाभ स्वरूप सुनकर भेदैकान्तवादी दार्शनिकने कहा कि हमें मोक्षका यह स्वरूप नहीं जचता। मोक्ष अनन्त चतुष्टयके लाभका नाम नहीं है किन्तु जीवके साथ ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार ये ९ चीजें लगी हैं, ये ९ गुण लगे हुए हैं। इनका विनाश हो जाय, ये आत्मामें न रहें इसका नाम मोक्ष है। अब भैया ! थोड़ी परख कीजिये। मोक्षके इस समय दो स्वरूप रखे हैं उनकी तुलना भी करते जायें। स्याद्वाददर्शन तो कहता है कि अनन्तज्ञानदर्शनसुखशक्तिचतुष्टयका लाभ हो जाना इसका नाम मोक्ष है। जिन भगवानकी हम मूर्ति स्थापित करके पूजते हैं, मूर्तिको तो नहीं पूजते, किन्तु पूज्य प्रभुकी मूर्तिकी स्थापना की है, तो स्थापित मूर्तिमें हमारा आदर है और आदरपूर्वक हम मूर्तिके समक्ष ध्यान करते हैं प्रभु अरहंतका, सकल परमात्माका। इससे आगे अवस्था है सिद्ध भगवानकी. जिसकी मूर्ति हम निराकारके रूपमें बनाते हैं तो उस मूर्तिको भी सामने रखकर पूजना किसको है ? सिद्ध भगवान को ! तो अरहंत और सिद्ध मिश्ररूपमें दोनोंके मोक्ष है और उस मोक्षका स्वरूप है। अनन्तज्ञानदर्शनशक्तिआनन्दचतुष्टयका लाभ हो जाना। जैनदर्शनने तो मोक्षका यह स्वरूप कहा, और वैशेषिक दर्शन जो भेद ही भेदको मानता है, उसके मोक्षका स्वरूप यह है कि आत्मामें जो ज्ञानादिक गुण लगे हुए हैं ये गुण नष्ट हो जायें, गुणोंका वियोग हो जाय, आत्मा गुणरहित हो जाय उसका नाम मोक्ष है। और इसीपर आलोचना चल रही है कि मोक्षका वास्तविक स्वरूप क्या है ?

संतानत्व हेतुकी असिद्धता और विरुद्धता—मोक्षका स्वरूप कहना कि बुद्धि आदिक गुणोंका उच्छेद हो जाय इसका नाम मुक्ति है और इस मुक्तिको सिद्ध करनेमें वैशेषिक दर्शन यह हेतु देता है कि संतानपना होनेसे चूंकि आत्मामें ज्ञानकी संतान चल रही है, ज्ञान हुआ फिर ज्ञान हुआ, यों ज्ञानकी परम्परा चलती रहती है, उसका। कहीं उच्छेद हो जाता है यह वैशेषिक लोगोंका हेतु है। जैसे दीपक जल रहा है तो दीपककी संतान चलती रहती है। अगर एक घंटे दीपक जला तो एक एक बूंद तेलकी बराबर आ आकर जलती रहती है इसी प्रकार ज्ञानकी संतान चल रही हैं। तो जब कोई संतान न रहेगी, ज्ञान नष्ट हो जायगा तब आत्मा ज्ञानरहित हो गया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसका नाम मोक्ष है। इस प्रकार वैशेषिक सिद्धान्तवादी मोक्षका जैसा स्वरुप कहते हैं उसके प्रति कहा जा रहा है कि यह हेतु विरुद्ध है, क्योंकि संतान नाम किसका है? कारण कार्य बनते जानेका! बहुत बूंदोंसे जलने वाले दीपकमें वे पूर्व पूर्व बूंद वाले दीप ज्योतिका कारण बनती हैं और उसकी अगली ज्योति कार्य बनती है। जैसे वृक्ष और बीजोंकी संतान चलदी है तो बीज कारण बनता है, वृक्ष कार्य बनता है, वृक्षसे फिर बीज होते, तो वृक्ष कारण बनता है, बीज कार्य बनता है। यों बीज और वृक्षकी परम्परा चलती रहती है। तो ऐसे ही आत्मामें ज्ञानकी संतान अर्थात् है, ज्ञानमें परम्परा चलती है, तो एकके बाद एक ज्ञानका अर्थ है कि पहिला ज्ञान छोड़ कर हुआ तो पूर्वज्ञान कारण हुआ और अगला कार्य हुआ। कार्यकारणरुप जो संतान है, यह एकान्त नित्य क्यों कार्यकारणभाव नहीं बनता। अर्थात् कोई चीज ज्योंकी त्यों अपरिणामी सदा बनी हुई है। जब उसमें कोई विकार ही नही आ सकता तो उसमें कार्य क्या बने? यदि संतानपनेका आधार एकान्त नित्य वाला ज्ञान आदि बनाया जाय तो कार्यकारण नहीं बन सकता और एकान्ततः अनित्य ही पदार्थ तो उसमें भी संतान नहीं बनती। जैसे बिखरे हुए चने पड़े हैं, स्वतंत्र स्वतन्त्र हैं तो उनकी संतान क्या बने? इसी प्रकार अनित्यमें प्रत्येक समयका जो कार्य है, पदार्थ है, यह तो स्वतन्त्र है, वह तो होकर मिट गया, फिर नये समयमें नया आया तो उसकी संतान क्या बने?

अनेकान्तमें अर्थक्रियाकी संभवता—एकान्त नित्य अथवा एकान्त अनित्य के आशयमें न संतान बन सकती है न उसका उच्छेद सम्भव है, अर्थक्रिया बिना सत् क्या अपना कोई पदार्थ कुछ काम कर सके यह बात अनेकान्तमें ही सम्भव है। जैसे सीधी अंगुलीको टेढ़ी करदी तो अंगुली यदि अनित्य है, पहिले समयमें थी, अब नही रही तो फिर अंगुलीका टेढ़ा काम होना तो नहीं बन सकता। यदि अंगुली अपरिणामी है, इसमें कुछ भी विकार नही आता तो टेढ़ी नही की जा सकती। काम बनता है उस पदार्थमें जो कथंचित् नित्य हो कथंचित् अनित्य हो। जब द्रव्यरूपसे पदार्थ आगे तक है तब कहा जायगा पर्यायदृष्टिसे ज्ञात होने वाले परिणमनको निरखकर कि इसमें कोई बात हुई। जैसे अंगुली अपरिणामी है तो अर्थक्रिया क्या? और यदि क्षण-क्षणमें नई-नई होती अनित्य में, तो बात किसमें मानोगे? इसी प्रकार पदार्थ अगर नित्य ही है तो इससे कोई काम नहीं बन सकता तथा अनित्य ही है तो उसमें अर्थक्रिया नही बन सकती। हां, द्रव्यदृष्टिसे नित्य पर्यायदृष्टिसे अनित्य है, पदार्थका स्वरूप ही ऐसा है कि पदार्थ सदा रहता है और उसमें पहिली पर्याय विलीन होती है और अगली पर्याय उत्पन्न होती है तो उसमें कार्य बन जाता है। तो अर्थ न होनेसे, अर्थक्रिया न होनेसे संतानपना तुम्हारे बुद्धि आदिकमें बन नही सकता।

गुणोच्छेदके अनुमानप्रयोगमें दिये गये दृष्टान्तकी साध्यविकलता—दूसरी बात यह है कि तुम्हारे संतानत्व हेतुके साध्य उच्छेदके लिये दृष्टान्त कुछ भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं मिलता। दृष्टान्त दिया था यह कि जैसे दीपककी संतान चलती है सो दीपक भी बिल्कुल मिट जाता है, यह दृष्टान्त नही बनता दीपक बिल्कुल कभी नही मिटता। कैसे ? जब दीपक बुझ गया तो यह नही होता कि दीपकमें जो परमाणु थे वे परमाणु नष्ट हो गए। अरे, वे धुवांरूपमें पतले होकर आकाशमें फैल गए या अन्य किसी रूप में ? जो अभी परमाणु उजेलेके रूपमें जल रहे थे वे कुछ अंधेरेरूपमें फैल गए, पर परमाणुवोंका विनाश नही होता। शब्द विद्युत दीपक आदिक जो भी दृष्टान्त दोगे कि ये नष्ट हो जाते हैं वे सर्वथा नष्ट नही होते, किसी न किसी रूपमें वे पदार्थ बने रहते हैं। यह मेघोंमें जो पतला उजाला आता है वह पहिले उजाला रूपमें दीखा बादमें अंधेरे रूपमें आ गया, उसका सर्वथा विनाश नहो हुआ। यह भी नहो कह सकते कि "ध्वस्त होजानेपर भी उस दीपक आदिकमें दूसरा परिणमन तुम मान रहे हो तो उसमें प्रत्यक्षसे बाधा आ रही। कहां है दीपक ? उसमें कैसे हुई नई बात, वह तो बिल्कुल ही मिट गया।" यों प्रत्यक्ष बाधाकी नई बात यहां कह नही सकते। आंखोंसे दृश्य न होने प्रदीपादिके अणुवोंमें प्रत्यक्ष बाधा यदि कहते हो तो उष्ण जलमें तेजो द्रव्यभी प्रत्यक्ष बाधित है उसे बाधित क्यों नहीं मानते ? वैशेषिक दर्शनमें इस तरहकी व्यवस्था मानी गई है कि जितनी गर्मी है वह सब तेजो द्रव्यकी है, अग्निकी है। जहाँ जहां गर्मी मिले वहां चमकती हुई कुछ न कुछ आग पड़ी है। तो जब पानी गरम हो जाता है तो गरम पानीके भीतर आग है या जलकी उष्णता है ? सो वे जलकी उष्णता वैशेषिकवादी कहते हैं कि जब जल गर्म हो जाता है तो वह जलकी गर्मी नहीं है। जो आग है उसकी गर्मी है तो वहां भी प्रत्यक्ष बाधा है। उस पानीमें चमकती हुई भासुररूप निर्मल अग्नि तो दिखती नही, वहां भी प्रत्यक्ष बाधा है। यदि यह कहो कि गर्मी भासुररूप वाले तेजो द्रव्यके बिना बिल्कुल हो नही सकता इसलिए यद्यपि वह अग्निरूप द्रव्य पानीमें प्रकट नही हो रहा फिर भी उसका अनुमान ज्ञान होता है कि उष्ण जलमें भासुर तेजोद्रव्य है। तो कहते हैं कि इस तरह यह भी मानना चाहिये कि दीपक बुझ गया तो इसके मायने यह नही है कि दीपकका सर्वथा उच्छेद होगया, जिन स्कन्धोंसे दीपक बना था वह अधकाररूपमें रहकर अब भी बना हुआ है। इसमें कोई बाधा नहीं आती, यह क्यों न मानलो !

वस्तुस्वरूप और मोक्षस्वरूप—स्वरूपकी यथार्थता यह है कि प्रत्येक द्रव्य उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप है। जिस समय जो उनकी परिणति है उस समय वही परिणति है। तो दीपक है वह भी एक स्कन्ध है और उसकी परिणति इस समय उजेले रूप है फिर अंधेरेरूप हो जाती है। आत्मा है वह ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसकी परिणति संसार अवस्थामें तुच्छ हो रही है, अल्पज्ञानरूप हो रही है। हमारे आत्माका जो ज्ञानानन्द स्वरूप है वह विकृत हो गया है। जब विकार हट गया तब मोक्षका स्वभाव क्या रह गया ? जैसा स्वभाव था वैसा ही पूराका पूरा रह गया, इसका नाम मोक्ष है। कहीं ज्ञानादिक गुणोंके उच्छेदका नाम मोक्ष नहीं है। जिन प्रभुको हम रोज

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूजते हैं, गुणस्मरण करते हैं, क्या हम उन प्रभुको इस रूपमें निरखें कि वहाँ ज्ञान भी नहीं, आनन्द भी नहीं, सब गुण खतम हो गए। अवगुण खतम हो गए यह बात तो मान ली जा सकती है। और भक्त इसके माननेमें इन्कार नहीं करता। उसका उत्साह है ऐसा माननेमें कि प्रभु समस्त अवगुणरहित है, उनमें दुःख नहीं, इच्छा नही द्वेष नही, पुण्य–पाप नही, सांसारिक वासनाओंके संस्कार नही किन्तु उनके साथ ही साथ यह हठ करना युक्त नही कि यह भी मान लीजिये कि उनमें ज्ञान नही, उनमें आनन्द नही। यदि ज्ञानानन्दका अभाव मान लिया तो फिर आत्मा क्या रहा? तथा जो ऐसा जानेगा कि मैं आत्मा ज्ञानविहीन हो जाऊंगा, आनन्दविहीन हो जाऊंगा तो वह मोक्ष प्राप्त करनेका उद्यम ही क्या करेगा? मोक्षका स्वरूप ही है उत्कृष्ट ज्ञान और उत्कृष्ट आनन्द !

आप्तमीमांसामें संकटमुक्त आप्तकी मीमांसा—समंतभद्राचार्यने जब जिनेन्द्र भगवानकी स्तुति प्रारम्भ की आप्तमीमांसा स्त्रोतके रूपमें, उससे पहिले वे आप्तमीमांसाकी रचना कर चुके थे, उसके बाद जब युक्त्यनुशासन स्तोत्र रचने लगे और उस समय जब आचार्यने यह कहा कि भगवान अब हम आपकी स्तुति करते हैं तो कुछ लोग पूछ उठे कि ऐ समन्तभद्राचार्य ! तुमने आप्तमीमांसाके रूपमें इतना बड़ा स्तोत्र रच लिया, पर आप अब कह रहे हो कि हे भगवान अब हम आपकी स्तुति प्रारम्भ करते हैं। तो आचार्य देव कहते हैं कि अभी तक हमने स्तुति न की थी बल्कि भगवानकी परीक्षा की थी कि जिन भगवानकी हम आप उपासना करते हैं उनका स्वरूप क्या है। उस परीक्षामें सब मत मतांतरोंका विवेचन आना ही पड़ा। आप्तमीमांसाका प्रारम्भ यों हुआ ये प्रभु इसलिए हमारे भगवान नहीं हैं कि ये आकाश में चलते हैं। अरे आकाशमें तो मायावी पुरुष, देव आदि भी चल सकते हैं। ये प्रभु इसलिए भी हमारे भगवान नहीं हैं कि इनके ऊपर चमर ढुलते हैं, छत्र लगा हुआ है। ऐसा तो मायावी पुरुष भी करा सकते हैं। ये प्रभु इसलिए भी हमारे भगवान नहीं हैं कि उनके शरीरमें धातु उपधातु आदिकके कोई मल नहीं है, अरे ऐसे शरीर तो देव-गतिके जीवोंमें भी पाये जाते हैं। ये प्रभु इसलिए भी भगवान नहीं हैं कि इन्होंने एक धर्म (जैनधर्म) चलाया। अरे ऐसे तो अनेकों लोग हुए जिन्होंने धर्म चलाया। पर, वे प्रभु भगवान किस कारण बने, इसे सुनिए—

भगवान आप्तकी पूज्यताका, महत्ताका कारण—आप्तमीमांसामें समंत-भद्राचार्यने यह बात बतायी कि भगवान इसलिए पूज्य हैं, महान हैं कि उनमें रंच भी दोष नहीं रहे, और जो उनका ज्ञानस्वरूप है उसका वहां पूर्ण विकास हो गया। ये दो बातें हैं जिससे वे प्रभु हैं, भगवान हैं। तो अब यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि कैसे तुमने जाना कि भगवानमें दोष नहीं रहे? तो इसमें अन्य भी युक्तियाँ हैं, पर जिस युक्ति पर यह आप्तमीमांसा ग्रन्थ रचा गया है उसकी बात कह रहे हैं। भगवान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में दोष रंच भी नहीं रहे, इसका प्रमाण यह है कि भगवानके वचनोंमें परस्पर विरोध नहीं है सो निर्दोष वचन है। प्रभुने जो उपदेश किया, जो तत्वका स्वरूप बताया, जो विवेचना की, जितना जो कुछ वर्णन है उस समस्त वर्णनमें कहीं दोष नहीं आता, ऐसे प्रभुके निर्दोष वचन , इससे यह सिद्ध है कि प्रभुमें दोष कुछ नहीं रहे। जैसे किसी व्यक्तिके जुखाम हो जाता है तो वह जो वचन बोलता है उन वचनोंसे ही लोग पहिचान लेते हैं कि इसको जुखाम हो गया है ऐसे ही चूंकि प्रभुके वचन निर्दोष हैं, उनके वचनोंकी निर्दोषताका हमें ज्ञान होता है इस कारण हम कह सकते हैं प्रभुमें कोई दोष नहीं है। और, जो दोषरहित है वही भगवान है सर्वज्ञ है। तो अब कुछ विवेचन है। तो अब कुछ विवेचन चलना चाहिए कि कैसे नहीं है उनकी वाणीमें दोष, तो उसके लिए दोषीक जो इतर वाणीमें आते हैं उन्हें बताना चाहिए ना, तो बस उसमें मतमतांतरोंका विवेचन हो गया।

वचनोंकी निर्दोषता बतानेके लिए सदोष मन्तव्योंके निरूपणकी अनिवार्यता—देखिए जिन लोगोंने पदार्थोंको नित्य कहा है उनके वचन सदोष हैं, सर्वथा नित्य पदार्थ होते ही नहीं, अर्थात् पदार्थ हो, उसमें अवस्था कुछ न हो, परिणमन भी कुछ न आये, ऐसा कभी हो नहीं सकता, पदार्थ ही न रहेंगे तो सर्वथा नित्यमें पदार्थत्व माननेका वचन सदोष है। यदि क्षण क्षणमें नया नया आत्मा बनता है, क्षण क्षणमें नये-नये परमाणु उत्पन्न होते हैं तो इसका सत्व ही नहीं रह सकता। तो असत् कहांसे आए ? जो सत् है उसका सर्वथा विनाश कैसे होगा और फिर जब नये-नये ज्ञान हैं तो हमें खबर क्यों रहती है ? हमने कल अमुकको अमुक चीज दी थी उससे अब लेना है। अरे जिसको दिया था वह तो नष्ट हो गया, अब यह दूसरा आत्मा है। तो इसकी खबर कैसे रहा करती है ? यों अनेक बातें दोषकी बतानी पड़ीं। बहुत विस्तार है। यहां तो संक्षेपमें प्रसङ्गवश यों कह रहे हैं कि सर्वथा नित्य एकांतमेंभी अर्थक्रिया नहीं बनती और सर्वथा अनित्य एकान्तमें भी अर्थक्रिया नहीं बनती।

संक्षेपमें प्रभुस्वरूपका और मोक्षस्वरूपका संपूर्ण निर्णय—जब समन्तभद्रस्वामी सदोष वचनोंका विवेचन करके उसीके साथ निर्दोष वचन क्या है यह परीक्षासे जब सिद्ध कर लिया अपने आपमें कि हे प्रभो, तुम ही एक निर्दोष हो, तुम ही एक उपासनीय हो। तुम्हारा स्वरूप जो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्त आनन्दमय है, उस ही स्वरूपका ध्यानकर भव्यजीव संसारके संकटोंसे पार हो सकते हैं। जब यह निर्णय हो चुका तो इस निर्णयके बाद अब समन्तभद्रस्वामी स्तवन कर रहे हैं। तो स्तवन करते हुएमें अपनी असक्ति बताकर कह रहे हैं कि हे प्रभु ! मुझमें यह सामर्थ्य नहीं है कि आपके गुणोंका वर्णन कर सकूं, क्योंकि गुण अनन्त हैं, उनका प्रतिपादन वचनोंसे असम्भव है। और, जो गुण समझमें आते हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐसे दो चार गुणोंका भी वचनों द्वारा प्रतिपादन नहीं हो सकता। तो प्रभु आप अनन्तगुणवान हैं। आपकी यथार्थता बतानेमें हमारे वचन असमर्थ हैं किंतु सिर्फ इतनी ही बात कहकर हम सन्तोष कर पाते हैं। ज्यादा विस्तार करनेकी बातका सामर्थ्य वचनोंमें नहीं ? इतना ही कहकर तृप्त होते हैं कि हे भगवान, आप ज्ञानकी परमकाष्ठा हो और आनन्दकी भी परमकाष्ठा हो, यह है आपका स्वरूप। अब देखो— इस स्वरूपमें कुछ कमी नहीं रही, पूर्ण ज्ञान है, पूर्ण आनन्द है, इससे बढ़कर और गुण क्या बताया जाय। तो जहां पूर्ण ज्ञान और आनन्दका विकास है वह मोक्ष कहलाता है। ऐसा मोक्षका स्वरूप जानकर ही हम अपना प्रयोजन सिद्ध कर सकते हैं कि ओह ऐसा पूर्णज्ञान होना, सर्व लोकके जाननहार रहना, रागद्वेष रंच न रहना और आनन्दमय बने रहना यही है जीवका विशुद्ध स्वरूप। इसी को कहते हैं मोक्ष, ऐसा स्वरूप जाननेपर ही मोक्षके लिए हम आप लोगोंका प्रयत्न हो सकता है, कहीं ज्ञानादिक गुणोंके उच्छेदका नाम मोक्ष है ऐसा जानकर मोक्षके लिए यत्न नहीं किया जा सकता।

आत्माके कैवल्यकी मोक्षरूपता—मोक्षके स्वरूपकी बात चल रही है कि मोक्ष कहते किसे हैं। मोक्षका शाब्दिक अर्थ है छुटकारा पाना। संसारके संकटोंसे छुटकारा पानेका नाम है मोक्ष। संसारके संकट हैं राग शोक आदिक लेकिन उन संकटोंमें मूल संकट है जन्म और मरणका। जन्म मरणसे छुटकारा पानेका नाम मोक्ष है। जब जन्म मरणसे छुटकारा हो जाता है तो आत्मामें रहा क्या ? शरीर रहा नहीं क्योंकि जन्ममरण छूट गया। कर्म भी रहे नहीं क्योंकि जन्म मरणका कारण कर्म है। और जन्म मरण न रहा इस कारण जाना जाता है कि अब कारण नहीं रहा। तो कर्म भी नहीं रहे, शरीर भी नहीं रहा तो फिर रागद्वेष किसमें होंगे ? रागद्वेष होनेका कारण तो उपाधिका सम्बन्ध है। जब उपाधि न रही तो रागद्वेष कैसे हों। जब रागद्वेष भी नहीं, कर्म भी नहीं, शरीर भी नहीं, खालिस आत्मा ही आत्मा रह जाता है इसका नाम है मोक्ष।

आत्माके गुणोंके उच्छेदकी असंभवता—इस प्रसङ्गमें एक विवाद यह चला था कि ज्ञानादिक गुणोंका भी आत्मासे निकल जाना इसका नाम है मोक्ष। जैसे कि शरीर निकल गया, कर्म निकल गए, रागद्वेष भाव निकल गए इसी प्रकार बुद्धि ज्ञान भी खतम हो जाय आत्मामेंसे, वह स्वरूप कहलाता है आत्माके मोक्षका। इसपर विचार चल रहा है। जैसे शरीर कर्म और रागादिक निकल गए इस तरह आत्माके ज्ञानादिक गुण नहीं निकलते। इसका कारण यह है कि आत्मा स्वयं ज्ञानमय है, ज्ञानस्वरूप है। यदि स्वरूपका उच्छेद हो जाय, स्वरूप नष्ट हो जाय तो पदार्थ ही न रहेगा। जैसे अग्निका स्वरूप है गर्मी। अगर गर्मी खतम हो जाय तो फिर अग्नि ही क्या रही ? कहीं ऐसी भी अग्नि मिलेगी क्या कि धधकती हुई अग्नि तो है पर उसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गर्मी नहीं है ? अग्निका स्वरूप ही गर्मी है तो स्वरूप निकल जानेपर फिर वह पदार्थ नही रह सकता इसी प्रकार आत्माका स्वरूप है ज्ञान। ज्ञानका अभाव हो जाय तो फिर आत्माका सद्भाव नहीं रह सकता।

शंकाकारके द्वारा दृष्टांतमें दिये गये प्रदीपादिक स्कंधोंके सर्वथा उच्छेदका अभाव—इस प्रसंगमें शंकाकारने रागादिक गुणोंके उच्छेदको सिद्ध करने के लिए हेतु दिया था कि चूंकि ज्ञानकी परम्परा लग रही है, आत्मामें, एक ज्ञानके बाद दूसरा दूसरेके बाद तीसरा, इस तरह जब ज्ञानकी डोर लग गयी है, तो जिसकी डोर लगती है, जिसकी संतान होती है उसका कहीं खातमा जरूर होता है। जैसे दीपककी संतान है, एक दीपक जल रहा है, उसमें कम क्रमसे नए-नए दीपक ही तो जल रहे हैं, जब जो बूंद आकर दीपक बने वह नया नया दीपक है, तो जैसे दीपककी संतान बन जाया करती है इसी प्रकारसे आत्मामें ज्ञानकी संतान चल रही है, और जो संतान होती है जिसकी सतान है तो उसका कहीं खातमा भी होता है। तो जैसे दीपककी संतान है और दीपक बुझ जाता है, मिट जाता है इसी प्रकार जब ज्ञानकी संतान है तो यह ज्ञानभी कही मिट जाता है, और ऐसा सिद्ध करनेमें दृष्टांत दिए गए हैं प्रदीप शब्द आदिकके। लेकिन दीपकका, शब्दका, बिजली आदिकका सर्वथा अभाव नही होता। जो परमाणु स्कन्ध अभी बिजली शब्द आदिकके रूपसे है वे परमाणुस्कंध कही नष्ट नही होते, वे अन्यरूप परिणम जाते हैं। बिना उपादानके जैसे उत्पत्ति यहाँ देखी नही जाती वैसे ही उपादानसे कार्य होते रहेंगे। कोई सा भी कार्य ले लो, उसका कुछ न कुछ वजूद था तब काम हुआ। जैसे दीपक कांसे बने। तेल बाती माचिस (अग्नि) वगैरहका सम्बन्ध किया, दीपक बन गया तो किन्ही पदार्थोंसे ही तो बना हुआ है जैसे बिना कुछ उपादानके उसमें कुछ कार्य नही बनता इसी प्रकार अब भी समझो कि जो उपादान है वह आगेके किसी कार्यको उत्पन्न करता ही रहता है। तो जिन स्कंधोंमें इस समय दीपककी उत्पत्ति हुई है उन स्कंधोंमें दीपक बुझनेपर धुंवा अन्धकार आदिक रूपसे परिणमे हुए उन परमाणुओंकी सत्ता न मिटेगी, वह और रूप परिणम गया, क्योंकि जो भी सत है उसका स्वभाव है कि पूर्व पर्यायका त्याग करे और उत्तर पर्यायका ग्रहण करे और उस सतमें भी उसकी स्थिति बनी रहे, उसका कहीं विनाश न हो। जैसे ये जीव हैं ना, हम आप जैसे आज मनुष्य पर्यायमें हैं। इससे पहिले भी हम किसी पर्यायमें थे, तो उस पूर्वपर्यायका त्याग किया और इस पर्यायका ग्रहण किया।

आत्माका त्रैकालिक सत्त्व, परिणमनका सन्तान और गुणोच्छेदका अभाव—कोई कहेगा कि हमने तो देखा नही, हमें कुछ मालूम नहीं, हम तो अभीसे हैं, पहिले कुछ थे ही नहीं, तो यह बात यों नही बनती कि एक बात यह है कि जो था नहीं, सत् नहीं, वह कभी सत् हो ही नही सकता। अब यह ध्यानमें लावो कि मैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव आज ऐसी अशुद्ध अवस्थामें हूँ, मनुष्य पर्याय रूपमें हूँ। तो यह जो अशुद्ध अवस्था मेरी बनी ऐसा जो एक कुछ भी मैं हूँ, जो मैं सत हूँ हूँ ऐसा तो ध्यानमें आता है। तो जो हैं, होता है वह उपादानसे ही रचा हुआ होता है, अर्थात् कुछ न हो और हो जाय ऐसी किसी भी वस्तुकी बात नही है। जो भी चीज बनती है। तो मैं हूँ तो मैं पहिले भी था, जब इस शरीरमें आया उसके पहिले भी मैं था। तो मैं था अवश्य यह निर्णय हो जानेके बाद फिर यह विचारो कि वह मैं किस रूपमें हो सकता था। मैं केवल मैं ही होता, शुद्ध होता अशुद्ध न होता तो अशुद्धता मुझमें आ नही सकती थी। आजकी अशुद्धता यह प्रमाणित करती है कि हम इससे पहिले भी अशुद्ध भवमें थे। तो इससे पहिले भी थे उस पर्यायका तो व्यय हुआ और अब मनुष्य पर्यायको उत्पाद हुआ और दोनों पर्यायोंमें हम नही हैं जो पहिले थे वही आज है। तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य ऐसा यहाँ देखा जा रहा है। ऐसे सब पदार्थोंमें उत्पादव्यय ध्रौव्यमय रूपता जाननी चाहिए। तो आत्मामें ज्ञानादिक जो गुण हैं वे मिट गए तो नए ज्ञान उत्पन्न हो गए। यहाँ संसार अवस्थामें होने वाले ज्ञानकी तुलना करके प्रभुके ज्ञानका उच्छेद करना यह बात युक्त नहीं है। यह तो माना जा सकता है कि हम आप लोगों के जैसे गड़बड़ ज्ञान हो रहे हैं, ज्ञान होते हैं, मिटते हैं, दुःखके कारण भी बन रहे हैं ऐसे ज्ञानोंका विकल्पोंका तो मोक्षमें सद्भाव नही है, पर ज्ञानका जो काम है जानना वह कभी छूट नही सकता। किसी भी अवस्थामें कोई जीव हो, जाननसे रहित कोई नही होता। प्रभु सिद्ध हो गए हैं तो उनमें शुद्ध ज्ञान चल रहा है। ज्ञानादिकगुणका उच्छेद नही है।

गुणोच्छेदके अभावका साधक अनुमान – अब तुम्हारे (शंकाकारके) द्वारा दिये गए अनुमानके विरोधमें एक अनुमान भी बनाया जा रहा है कि ज्ञानादिकका जो संतान है, ज्ञानोंका होते रहना है यह कभी नष्ट नहीं होता, क्योंकि उस प्रकारके नष्ट होनेका कोई प्रमाण नहीं पाया जा रहा। जैसे हम देखते हैं कि ये दृश्यमान पदार्थ स्कंध इनमें रूपकी संतान चल रही, काला, पीला, नीला आदिक, तो कल्पनामें आता है क्या कि जब इसमें रूपकी संतान चली है तो कभी न कभी इस पुद्गलमें रूपका उच्छेद भी हो सकता है। इस पदार्थमें कितने ही रूप बदल गए, कितने ही बदलेंगे पर ऐसा समय तो कभी न आयगा कि इन पदार्थोंमें रूप न रहे। कुछ भी तो रहेगा। काला, पीला, नीला, सफेद आदिक कुछ भी न हो तो क्या होगा इस पुद्गलमें, इस पिण्डमें। यह कल्पना ही नहीं हो पाती है कि इसके रूपका कही विनाश है। संतान तो इसकी भी है। तो जिसकी परिपाटी है उसका विनाश हो यह नियम नहीं बनता।

गुणोच्छेदरूप मोक्षकी निर्हेतुकता खैर किसी प्रकार तुम्हारी हठ थोड़ी देरको स्वीकार भी करलें कि चलो संतानका उच्छेद हो जाता है पर यह बतलावो कि ऐसा मोक्ष होनेमें जहां ज्ञानादिक गुणोंकी संतान नहीं रहती उस मोक्षका कारण क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है ? बिना कारणके तो किसीका विनाश नही होता है। अगर ज्ञानादिक गुणोंका विनाश होता है ऐसा मोक्ष मानते हो तो बतलाओ ? कारण कुछ नहीं मिल सकेगा। शंकाकार कहता है कि है कारण। ज्ञानादिक गुणों का उच्छेद हो जाता है उसका नाम मोक्ष है और आत्मा ज्ञानहीन हो जाता है तो आत्माके ज्ञानके नष्ट होनेका कारण हम बतलाते हैं। उस मोहैका कारण यह है कि उस जीवको तत्त्वज्ञान हुआ और वह तत्त्व ज्ञान पहिले तो विपरीत ज्ञानको हटाकर हुआ, फिर उस तत्त्वज्ञानमें कुछ और विशेषता आयी, यही तत्त्वज्ञान मोक्षका कारण बन जाता है और वह मोक्ष है गुणोंके उच्छेद रूप। अब देखो कैसी बलहीन दलील है कि गुणोंके उच्छेदका कारण, ज्ञानके विनाश हो जाने का कारण क्या है ? तत्त्वज्ञान। तत्त्वज्ञान हो तो उससे ज्ञानका नाश होगा। और ज्ञान का नाश होनेसे मोक्ष मान लिया गया। तो तत्वज्ञान हुआ और वह ज्ञान ज्ञानको नाश करने वाला बन गया यह बात किसी युक्तिमें आ सकती है क्या ? और, तत्वज्ञान जब मोक्षका कारण है तो वह तत्वज्ञान उपादेयभूत हुआ। कोई परमार्थ बात हुई। उस तत्वज्ञानके उत्पन्न होनेके बाद फिर वह कैसे ज्ञानके उच्छेदका हेतु रहा ?

गुणोच्छेदवादमें तत्त्वज्ञान द्वारा विपर्ययज्ञानके उच्छेदकी असिद्धि— खैर, मान लो कि तत्त्वज्ञान तुम्हारे कल्पित मोक्षका कारण है तो फिर तत्त्वज्ञानमें विपरीत ज्ञानको नाश करनेका सामर्थ्य है, यह तुमने कैसे निर्णय किया ? यदि कहो कि सम्यग्ज्ञानमें ऐसी प्रकृति ही है कि मिथ्याज्ञानका विनाश करदे। जैसे पड़ी तो थी सीप और सन्देह हो गया कि यह सीप है या चांदी ? अथवा विपर्यय ज्ञान हो गया कि यह तो चांदी ही है। जब उसकी परीक्षा की जाती है तो निर्णय हो जाता है कि यह तो कोरी सीप है। तो जैसे सीप है ऐसा सम्यग्ज्ञान हुआ, तो उससे विपरीत ज्ञान का विनाश हो गया ना। तब ऐसा ही समझना चाहिए कि जिस जीवको तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है उसको जो विपर्यय ज्ञान पहिले लदा हुआ था संसारकी पर्यायको आत्मा माननेका या ज्ञानगुणको ही आत्मा माननेका जो कुछ विपर्यय भाव लगा था उसका उच्छेद हो जाता है। शङ्काकारकी इस युक्तिपर प्रश्न उठता है कि जैसे सीप चांदीके विषयके परिज्ञानमें जो पीछे ज्ञान हुआ है उसको बताते हो कि पिछले ज्ञानके हटनेका कारण है तो हम भी तो कह सकते कि मिथ्याज्ञानसे सम्यग्ज्ञान भी नष्ट होता है। जैसे सम्यग्ज्ञानसे मिथ्याज्ञान नष्ट होता है इसी तरह मिथ्याज्ञानसे सम्यग्ज्ञान नष्ट होता है। सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान ये तो परस्पर विरोधी हैं। सम्यग्ज्ञान होगा तो मिथ्याज्ञान नहीं रह सकता, मिथ्याज्ञान होगा तो सम्यग्ज्ञान नहीं रह सकता जैसे— तत्त्वज्ञानके द्वारा विपर्ययज्ञानका उच्छेद बताते हो इसी प्रकार मिथ्याज्ञानके द्वारा सम्यग्ज्ञानका भी उच्छेद जानो।

तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञानकी संतानके उच्छेदका प्रस्ताव— शंकाकार कहता है कि हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि सम्यग्ज्ञानके द्वारा मिथ्याज्ञानका उच्छेद

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है और मिथ्याज्ञानके द्वारा सम्यग्यानका उच्छेद होता है, किन्तु हम तो ज्ञानके संतानके उच्छेदकी बात कह रहे हैं। सम्यग्ज्ञान होनेसे मिथ्याज्ञानकी जो परम्परा लगी हुई थी उसका विनाश हो जाता है। जैसे जो देह है सो मैं हूँ ऐसा जो मिथ्याज्ञान अनादिसे लग रहा है और उसकी परिपाटी चल रही है उस मिथ्याज्ञानकी संतानका विनाश तत्वज्ञानसे हुआ। ऐसी बात यहां नहीं लगा सकते कि यों सम्यग्ज्ञानकी परम्परा चल उठे तो उस संतानका मिथ्याज्ञान विनाश कर देगा। सम्यग्ज्ञान है सत्यबात और मिथ्याज्ञान है विपरीत। सत्यबात बलवान होती है। बलवानके द्वारा निर्बलका संतान ही मिटाया जा सकता है, निर्बलके द्वारा बलवानकी संतान नही मिटाई जा सकती है। तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि मिथ्याज्ञानकी जो संतति चल रही है वह सम्यग्ज्ञान के द्वारा नष्ट कर दी जाती है। जब मिथ्याज्ञान दूर हुआ तो फिर रागादिक भी दूर हो गये, और जब रागादिक न रहे, कारण न रहा तो रागका काम था मन, वचन, कायकी चेष्टामें होना तो रागके न होनेसे मन वचन कायकी चेष्टायें भी समाप्त हो गई मन, वचन, कायकी चेष्टायें दूर होनेसे तत्वज्ञान हो गया, और उस तत्वज्ञानके होनेसे मिथ्याज्ञान दूर हो गया, अब धर्म अधर्म आदिक भी उत्पन्न नहीं हो सकते। तो यों धर्म अधर्म जब न उत्पन्न हुए पुण्यपाप जब न इसके उत्पन्न हों तब उनका मोक्ष होता है। तो इस मोक्षमें धर्म अधर्म नही रहते सुख दुःख भी नहीं रहते, इच्छा द्वेष भी नहीं रहते और ज्ञान भी नही रहता, समस्त गुणोंका उच्छेद हो जाता है।

तत्त्वज्ञान द्वारा विपर्ययताका उच्छेद होनेपर भी ज्ञानगुणके उच्छेदकी सिद्धिका अभाव— देखिये ! शङ्काकारके इस कथनमें कुछ कथन तो भले लगते हैं, पर जहां एक किया हुआ पक्ष जब सामने आता है कि गुणके अभावका नाम मोक्ष है, तब यह कही हुई सच्ची बात भी फीकी पड़ जाती है। क्या यह बात ठीक नहीं है कि जब तत्त्वज्ञान होता है तो मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है ? सब कोई मान लेंगे कि जब मिथ्याज्ञान दूर हुआ तो रागादिक भाव भी दूर होने लगते हैं यह बात भी तो सही है। जब राग भाव दूर हो जाता है तो मन, वचन कायकी चेष्टायें भी समाप्त होती हैं। यह भी ठीक है। और जब मन, वचन, कायका योग समाप्त हो गया तो वहां न न पुण्यका आश्रय हुआ न पापका। पर इस सबके कहनेका उद्देश्य क्या है शङ्काकार का कि जहां पुण्य-पाप, सुख-दुख ज्ञान आदिक सब गुण समाप्त हो जायें, केवल आत्मा रहे, केवल चिन्मात्र रहे। जहां परिणति कुछ नही उसका नाम मोक्ष है। जहां यह बात सामने रखी कि अब जो बात तत्त्वज्ञान आदिककी कही वह भी खण्डित करने योग्य बन जाती है।

तत्त्वज्ञानद्वारा विपरीतताका उच्छेद और ज्ञानादिगुणोंका पूर्णविकास— तत्त्वज्ञान विपरीत ज्ञानके हटनेके क्रमसे बढ़कर मोक्षका हेतु बनता है अर्थात् तत्त्वज्ञान से ही तो विपरीत ज्ञान हटा, उसके हटनेसे रागादिक हटे, रागादिकके हटनेसे धर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अधर्म आदिक हटे, उनके हटनेसे फिर मोक्ष होता है। इस प्रकार तत्वज्ञान उस गुणोच्छेदरूप मोक्षका कारण है यह कहना अयुक्त है। उस तत्वज्ञानसे यद्यपि विपर्यय ज्ञान तो हट जाता है, धर्म अधर्म पुण्य पाप ये भी हट जाते हैं, पुण्य पापके कार्यभूत शरीरादिक भी हट जाते हैं पर इतनी उपाधियां हट जानेपर भी अनन्त अतीन्द्रिय समस्त पदार्थोंको विषय करने वाला ज्ञान हट जाय यह सिद्ध न होगा। तत्वज्ञानसे विपरीततायें, सब उल्टी बातें, सब हट गयीं, यहां तक तो कथन ठीक है, पर ज्ञानादिक गुण भी हट गए यह कैसे सिद्ध होगा? तत्वज्ञानसे तो ज्ञानादिक गुणोंका परिपूर्ण विकास हो जाता है। तत्वज्ञानका प्रकाश इन अवगुणोंसे हटा रहे, फिर कहीं वह प्रकाश भी बुझ जाय इसका नाम है, यह तो तत्वज्ञानसे विपरीत बात हो जाएगी। इसी प्रकार आनन्दकी संतान भी नहीं हटती। ऐसा तत्वज्ञान कौन उपाजन करेगा जो आनन्दको भी मिटा दे? किसीसे कहा जाय कि तुम एक उपाय करो, जैसे तुम्हारा आनन्द खतम हो जाय वह उपाय करो। तो इस बातको कोई सुनना भी नहीं पसद करता, उपाय करेगा! यही बात तुमने मोक्षके स्वरूपमें बता दी। ऐसा मोक्ष उत्पन्न करो जहां ज्ञान नहीं रहे। ऐसे मोक्षके लिए कौन प्रयत्न करे? हां यह बात तो युक्त है कि संसारी जीवोंने जिन विषयोंके सुखको सुख मान रखा है, खाना, पीना, देखना सुनना, मनके विकल्प बढ़ना यश नाम आदिककी बात सोचना, इनमें जो सुख मान रखा है यह सुख नहीं रहता मोक्षमें। कल्पित सुख मिथ्यासुख है, यह तो नहीं रहता किन्तु सहज अनन्त जो वहां आनन्द है, जो आत्माका स्वरूप है वह भी समाप्त हो जाय यह बात नहीं जमती। तो तत्वज्ञानसे ये सब क्षायोपशमिक ज्ञान, सराग ज्ञान भी मिट जायें, यह भी मंजूर है, ये काल्पनिक संसारके सुख भी समाप्त हो जायें यह भी स्वीकार है, पर इन सबके मिट जानेपर ज्ञानस्वरूप मिट जाता है यह बात स्वीकार नहीं हो सकती।

ज्ञानके स्वरूपके अपरिचयमें ही ज्ञानोच्छेदरूप मोक्षकी कल्पना — कोई पुरुष यदि मोक्षमें ज्ञानका अभाव स्वीकार करे तो उसका अर्थ यह है कि उसने ज्ञानका स्वरूप नहीं समझ पाया। इन्द्रियोंके द्वारा जो ज्ञान हुआ बस उसे ही समझ पाया। जो कानोंसे सुनकर, आंखोंसे देखकर, नाक रसना, इन्द्रिय आदिकसे जानकर समझा इतना ही ज्ञान समझा, इसके आगे ज्ञान और कुछ नहीं है ऐसा जिसका भाव हो, ज्ञान हो, सो ज्ञानके स्वरूपको न समझना ही वही यह मान सकता है कि जहां यह ज्ञान खतम हो जायगा उसका नाम मोक्ष है क्योंकि इन ज्ञानोंमें बड़ा दुःख भरा है। कल्पनानुसार जो ज्ञानका स्वरूप बनाया गया है, देख लो सारा दुःख ज्ञानमें पड़ा हुआ है। कहीं लाख दो लाखका टोटा पड़ गया है इस प्रकारकी बात ज्ञानमें आयी तो झट दुःख हो गया। कहीं चाहे २ लाखका लाभ हुआ हो और तारमें ऐसा कुछ पढ़नेमें आ जाय कि २ लाखकी हानि हुई तो उस ज्ञानके होनेसे कितना दुःख होता है। तो दुःखका कारण उन्होंने ज्ञान समझा है। ज्ञान न हो तो ये सब दुःख मिट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जायेंगे ऐसा समझा है पर यह नही जान सके कि आत्माका स्वरूप फिर है क्या ? केवल चिन्मात्र कहनेसे आत्माके स्वरूपकी व्यवस्था नही बनती। चिन्मात्र मायने चेतता। अब वह चेतना क्या स्वरूप रखती है उस चेतनाका भाव क्या है उस चेतनामें आता क्या है जरा स्वरूपपर दृष्टि दो तो इतना तो मालूम ही पड़ेगा। और, प्रतिभासके मायने हीं जानना है।

लौकिक ज्ञानोंमें सरागताके कारण व्यावहारिकता भैया ! यह जो ज्ञानका ऐसा मोटा रूप बन गया है सो वह केवल प्रतिभासमात्र नही है इसलिए मोटारूप दिख रहा है. एक दूसरेकी झट समझमें आ जाता है। उस ज्ञानके साथ राग लगा है, विकल्प विचार लगे हैं और इस कारण उनके कुछ समझने लायक मूर्तरूप बन गया है, परन्तु ज्ञानका सत्यस्वरूप क्या है ? केवल जाननहार। जाननहारकी अवस्था है, जिसमें वस्तु पकड़ी नही जाती, उसमें स्नेह नही रहता, उसमें विकल्प नही रहता। केवल जाननहार। जैसे आप मार्गसे चले जा रहे हैं, बीसों आदमी आपको दिखते हैं जिनको कभी देखा ही नही, जिनसे कुछ मतलब ही नही, उनमें आपका चित्त नही अटकता और सामनेसे कोई घरका आदमी या मित्र या रिश्तेदार आता हुआ दिख जाय तो उसमें आपका चित्त झट अटक जाता है। तो जहां आपका चित्त अटकता नहीं वह तो है जाननका शुद्ध रूप और जहाँ आपका चित्त अटक जाता है वह है जाननका अशुद्ध रूप। वहां सिर्फ ज्ञान ही ज्ञान नही है। रागादिक भावके मिलापसे ज्ञानका वह रूप बना है। ज्ञान तो आत्माका स्वरूप है। ज्ञान न रहे तो आत्मा क्या रहा ?

ज्ञानस्वरूपके परिचयका प्रयत्न—अब भी आप परख लो। जब आप अपने आत्माको जानना चाहें तो क्या उपाय करना चाहिए। आत्मासे अतिरिक्त अन्य जितने पदार्थ हैं उन पदार्थोंका समागम मेरी भलाईका कारण नही है, इतना तो मोटा निर्णय सबका हो सकता है। आप ही विचारें जिस घरमें जिस परिवारके साथ आप रह रहे हैं, जिन ग्राहकोंके बीच आप बैठा करते हैं वे सभी समागम आपकी शान्तिके कारण होते हैं या अशान्तिके ? उनसे आपको कुछ आत्माका लाभ मिलता है क्या ? वे सब समागम छोड़ जाने पड़ेंगे। वे कोई भी समागम इस जीवकी मदद न कर सकेंगे। यहांसे मरण हो जानेके बाद नया शरीर धारण करना पड़ेगा, नया समागम होगा, फिर वही नये ढंगसे ज्ञान चलेगा, वहाँपर पिछले भवका कोई समागम मदद न कर सकेगा। तो इतना निर्णय होना चाहिए कि यहांके कोई भी समागम मेरे हितरूप नही हैं। अतः उन समस्त समागमोंसे उपेक्षा होनी चाहिए। उन समागमोंका विकल्प करते करते थक गए, अब तो कुछ उनके विकल्पोंसे विश्राम लेना चाहिए। किसी भी पर पदार्थकी बात सोचनेमें न आए ऐसे संकल्पपूर्वक बैठे तो अन्दर ही अन्दर जो ज्ञानप्रकाश है वह भीतर ही भीतर प्रवेश करके एक ज्ञानस्वरूपको जानेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह आप स्वयं भी अनुभव कर सकते हैं। आत्मा का स्वरूप ज्ञान है, उसका जानना कैसे छूटेगा ? सब कुछ भी बाह्यज्ञान छूट जायें मगर ज्ञानस्वरूप ज्ञानकी झलक, ज्ञानका प्रकाश ये कभी भी नही छूट सकते है, इससे ज्ञानके अभावका नाम मोक्ष नहीं है किन्तु ज्ञानके साथ जो रागादिक विकार लग रहे थे उनका खात्मा हो जाना और ज्ञानका विकास हो जाना इसका नाम मोक्ष है। तो मोक्ष ज्ञान, दर्शन, शक्ति, आनन्द इन चतुष्टयोंकी सिद्धिको ही कहते हैं।

इन्द्रियोंके बिना ज्ञानसंतान संभव होनेसे आत्माकी ज्ञानप्रयत्नकी सिद्धिमें बाधाका अभाव—शरीरके अलग होनेपर मोक्ष होता है इतनी बात तो सर्वसम्मत है, इसमें किसीको भ्रम नहीं। मोक्षमें ज्ञानादिक गुणोंका विनाश हो जाता है इसमें विसंवाद है। इस भ्रमका कारण यह भी हो सकता है कि जब शरीर न रहा तो तो इन्द्रिय भी न रही, अब वह ज्ञान किसके द्वारा करे जो पुरुष इन्द्रियके द्वारा ही ज्ञानका विकास समझते हैं वे इन्द्रियके बिना ज्ञानकी असम्भवता जानकर मोक्ष अवस्थामें ज्ञानगुणका विनाश मान सकते हैं, लेकिन यह भ्रम रखना भ्रम ही है। इंद्रिय के नष्ट होनेपर भी ज्ञानादिक गुणोंकी सन्ता बराबर चलती रहती है इसका कारण यह है कि ज्ञानका अविनाभाव इन्द्रियके साथ नही है। ज्ञान तो आत्माका स्वरूप है। ज्ञान तो आत्माके साथ ही अनादिसे है अनन्तकाल तक रहेगा। अथवा वहाँ दो बातें हैं ही नहीं कि ज्ञान कोई अलग सत् हो आत्मा अलग सत् हो। आत्मा ही ज्ञानमय है। तो इन्द्रियके विनष्ट होनेपर ज्ञान बराबर बना रहता है। ज्ञानकी साधक इन्द्रियां नहीं हैं। इन्द्रियाँ तो बल्कि ज्ञानकी बाधक समझना चाहिए। जैसे कोई पुरुष किसी मकानके भीतर बैठा हो, खिड़कियोंमेंसे बाहरकी बात देखे तो देखने वाली खिड़कियां हैं ? देखने वाला तो पुरुष है। उस बन्धनकी अवस्थामें अर्थात् मकानके अन्दर वह पड़ा हुआ है इस बन्धनके कारण उसे इस समय खिड़कियोंके द्वारसे ही देखनेकी बात आती है। खिड़कियां देखनेका साधन नहीं वह तो बन्धन वाली बात है। देखनेका साधन तो उस पुरुषकी आँख ही स्वय है। वे खिड़कियां तो बल्कि देखनेमें बाधक हैं। यदि खिड़कियां न होती, भींटका आवरण न होता तो वह पुरुष चारों ओरसे निरख सकता था, इसी प्रकार ज्ञानमय यह आत्मा शरीरके महलमें पड़ा हुआ है, अब शरीर की ये दीवालें चारों तरफ हैं, ऐसी स्थितिमें यह आत्मा इन इन्द्रियके द्वारसे इन खिड़कियोंसे देख सकता है, बाहरकी बात जान सकता है, पर देखने जाने वाली ये इन्द्रियाँ नहीं हैं, यह आत्मा ही है। ये इन्द्रियाँ तो बल्कि देखने जाननेमें बाधक हैं। यदि शरीर न होता, ये इन्द्रिय न होती तो यह आत्मा तो चारों ओरसे जानता।

शरीरप्रीतिका कारण इन्द्रियज ज्ञान व सुखमें अपना ज्ञान व सुख माननेका भ्रम—इस शरीरसे बहुत बड़ी प्रीति हो जानेका कारण एक यह भी हो सकता है कि चूंकि इस अवस्थामें इंद्रियोंके द्वारा ज्ञान होता है और ज्ञान करना सब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को प्रिय है, इन्द्रियोंके द्वारा ही सुखका अनुभव होता है, सुख भी सब चाहते हैं तो इस हालतमें ज्ञान और सुखका साधन इंद्रियोंको मान रहे हैं तो इंद्रिय और ज्ञानके साधनोंको सुरक्षित रखनेका ख्याल उनके मनमें आएगा ही। परन्तु जब यह विदित हो जाय कि ये इंद्रियाँ हमारे ज्ञान और आनन्दमें साधक नहीं बल्कि बाधक हैं तो इतना ज्ञान होनेपर फिर उसे इंद्रिय ज्ञानोंसे, इन इंद्रिय सुखोंसे प्रीति नहीं रहेगी। जैसे किसी नाबालिग बच्चेकी करोड़ों रुपयेकी सम्पत्तिपर गवर्नमेंटने कोर्ट कर रखा हो और १०००) मासिक उसके खर्चके लिए दे रही हो तो जब तक वह बच्चा बालिग नहीं बनता है तब तक तो वह सरकारके गुण गाता है, पर जब उसे यह सही ज्ञान हो जाता है कि अरे मेरी करोड़ों रुपयोंकी सम्पत्तिको सरकारने कोर्ट कर रखा है तो अब उसे १०००) मासिकमें प्रीति नहीं रहती। वह तो सरकारको नोटिस दे देता है कि मुझे नहीं चाहिए ये १०००) मासिक मुझे तो मेरी करोड़ों रुपयोंकी सम्पत्ति दी जाय। इसी प्रकार ये संसारी नाबालिग अनजान प्राणी इन इंद्रिय ज्ञानों के इंद्रिय सुखोंके गुण गाते हैं, पर जब सही ज्ञान बन जाता है कि ओह ! इन इंद्रिय ज्ञानों, इंद्रिय सुखोंको नोटिस दे देता है अर्थात् इन समस्त इंद्रिय विषयोंका परित्याग कर देता है और अपने अनन्त आनन्दकी विभूतिको प्राप्त कर लेता है। तो इन इंद्रिय जन्य ज्ञानोंसे व सुखोंसे प्रीतिकरके मुक्तिका मार्ग नहीं मिल सकता। मुक्तिके मार्गसे चलनेपर ये शरीर इंद्रिय आदिके आवरण सब हट जाते हैं पर जाननहार जो अपना आत्मस्वरूप है जो ज्ञान है वह बराबर रहता है। इन इंद्रियोंके नष्ट होनेपर ज्ञान की सन्तान नष्ट नहीं होती। इस कारण यह भ्रम भरी बात मत मानो कि मुक्त होने पर आत्मामें ज्ञानादिक गुण नहीं रहते।

अतीन्द्रिय ज्ञानकी सिद्धिकी सफलता—शङ्काकारसे कहा जा रहा है कि यदि तुम अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं मानते तो फिर तुम्हारे महेश्वरमें ज्ञानका सद्भाव कैसे रहेगा ? यहां थोड़ा शङ्काकारका सिद्धान्त समझ लीजिये। इनके सिद्धान्तमें जगतकी व्यवस्था इस प्रकार है कि कोई एक महेश्वर अनादिमुक्त है, वह समस्त जगतको जानता है और इसी कारण वह जगतकी सृष्टि रचता है। सृष्टिके रचनेमें जीव रचे और भौतिक पदार्थ ये सब रचे। रचनेके बाद अब ज्ञानादिक गुण उत्पन्न हुए, उनका हुआ आत्मामें सम्बन्ध, अब ये विकल्प करने लगे। इनमें ज्ञानादिक विषयादिक लग गए ना। अब यह जीव तत्वज्ञान करता है तो इसे मोक्ष प्राप्त होता है। वहां शरीर नहीं रहता, ज्ञान नहीं रहता इस प्रकार ज्ञानादिकके उच्छेदसे उन्हें मोक्ष होता है। तो दो तरहके मुक्त हुए एक अनादिमुक्त और एक कर्ममुक्त। तो महेश्वर अनादिमुक्त और ये अनन्त योगी जीव कर्ममुक्त हुए। ऐसा सिद्धान्त है उन शङ्का करने वालोंका। तो उनसे पूछा जा रहा है कि अतीन्द्रिय ज्ञान तो तुमने भी माना, चाहे महेश्वरमें ही माना सही, तो यह तो निश्चित हो गया कि शरीर न रहनेपर भी ज्ञान रहता है। यह भी नहीं कह सकते कि ईश्वरका ज्ञान नित्य है उनका ज्ञान तो सदासे चला आया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। यदि नित्य है ज्ञान तो उसमें फिर क्रिया नहीं हो सकती। तो जैसे अनन्त ज्ञान वाला महेश्वर है इसी तरह कर्मयुक्त आत्माका भी ज्ञान रहना चाहिए क्योंकि शरीर के बिना भी तो तुमने ज्ञान माना है। यदि स्वभाव नष्ट हो जाय तो बड़ी अव्यवस्था हो जायगी। हम कहेंगे कि देखो! यह है हमारे हाथपर घड़ा।···अरे कहाँ है घड़ा? घड़ा होता तो उसका आकार, उसका धर्म भी तो होता। अरे धर्मके बिना भी पदार्थ रहने लगा शङ्काकारके मतमें। देखो ज्ञानके बिना भी आत्मा रहता है यों अटपट कितनी ही बातें कही जा सकती हैं फिर तो कोई वस्तुकी व्यवस्था न रहेगी।

फलोपभोगके बिना कर्मप्रक्षयका अभाव माननेका ऐकान्तिक ख्याल— विशेषवादीके सिद्धान्तसे ये जीव यह शरीर ही मैं हूँ, यह ज्ञान मैं हूँ, इस मिथ्याज्ञान से जन्म मरण करते हैं, कर्मफल भोगते हैं। जब उन्हें तत्वज्ञान हो जाता है तो उनका मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है। मिथ्याज्ञानके दूर होनेसे रागादिक दूर हुए और रागादिक दूर होनेसे मन वचन कायकी प्रवृत्तियां भी नष्ट हुई। और उन प्रवृत्तियोंके नष्ट होनेसे धर्म अधर्म पुण्य पाप आदिक नष्ट हुए। अब आगे पुण्य पाप न बधेंगे। तो उनसे समाधानके लिए पूछा जा रहा है कि यह तो बतलावो कि आगेके लिए पुण्य-पाप तो न बधेंगे, पर वर्तमानमें जो करोड़ों कल्पकालके लिए कर्म बँधे हैं और करोड़ों कल्पकाल तक बँधे रह भी सकते हैं तो उनका क्षय कैसे होगा? इसके उत्तरमें शङ्काकार कह रहा है कि जिन कर्मोंने अपना काम शुरू कर दिया है, शरीरका मिलना, इन्द्रियोंका मिलना आदिक जो भी कार्य उन कर्मोंका है वे साधन मिल गए तो सुख दुखके भोगनेसे ही उनके कर्म दूर हो सकते हैं। और, जो कर्म कभी सत्तामें मौजूद हैं, वे कर्म भी अपना फल देकर नष्ट होंगे। कर्म जो होते हैं वे फल दिये बिना नष्ट नहीं हो सकते, यह शङ्काकारका सिद्धान्त है। कितना ही तत्वज्ञान हो जाय, तत्वज्ञान होनेसे आगामी कर्म न बँधेगे, मगर जो कर्म बंध चुके हैं वे तो अपना फल देकर ही दूर हो सकेंगे उनका फल भोगे बिना वे कर्म दूर नहीं होते। इस विषयमें शङ्काकार आगमका भी प्रमाण दे सकता है जैसेकि उनके अभिमत ग्रन्थोंमें लिखा है "सैंकड़ों करोड़ों कल्प व्यतीत हो जायें तो भी बंधे हुए कर्म बिना भोगे नहीं खिरते हैं।" शङ्काकारका यह सिद्धान्त है कि आगामी कर्मोंका आना बन्द होनेपर भी जो कर्म सत्तामें पड़े हैं वे तो फल देकर ही खिरेंगे।

उत्तम अन्तरात्मावोंके फलोपभोगके बिना भी कर्मप्रक्षयकी सिद्धि— अब इसके उत्तरमें कह रहे हैं कि तुम्हारा यह कहना युक्त नहीं है कि जिस कर्मने अपने कार्यका प्रारम्भ कर दिया है वह कर्म भी उपभोगसे ही दूर होता है और जिसने काम शुरू नहीं किया है, सत्तामें है वह कर्म भी फलके उपभोगसे ही नष्ट होता है, यह बात क्यों युक्त नहीं है कि यदि कर्म फल देकर ही नष्ट होते हैं तो कर्मोंके फलके समयमें मन, वचन, कायकी चेष्टा तो है ना, अन्यथा फल नाम किसका है? मन न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बिगड़े, वचन न बिगड़े, काय न बिगड़े, इनकी चेष्टा न हो तो फल नाम किसका है ? यदि फल देकर कर्म झड़ते हैं तो फलमें हुई मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति, और मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिसे बँधता है कर्म। जब उसमें नवीन कर्म और बँध गये तो फिर उनका क्षय कैसे होगा ? वह तो कर्मोंकी परम्परा चलती ही जायगी। वास्तविकता तो यह है कि कर्मोंका फल भोगनेसे भी कर्म दूर होते हैं और बिना फल भोगे भी ज्ञान आराधनाके बलसे, परम ध्यानके प्रतापसे अनेक कर्म फल भोगे बिना भी खिराये जा सकते हैं। यह कहना ठीक नहीं कि चाहे कितना ही तत्वज्ञानी हो उसके भी कर्म फल देकर ही दूर होंगे और कर्मका कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं है कि फल दिये बिना दूर हो सके। अरे, चरणानुसारी सम्यग्ज्ञानमें ही वह सब सामर्थ्य पड़ी है कि उससे ही कर्मोंका निरोध होता है और उसीसे कर्मोंका प्रक्षय होता है। जैसे सम्यग्ज्ञान हो कर मिथ्याज्ञान नहीं रहता। सम्यग्ज्ञानके बलसे मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है। तो उसी सम्यग्ज्ञानमें जब बाह्य योग दूर हुए, अन्तरङ्ग विकल्प दूर हुए, सम्यग्ज्ञानकी स्थिरता बढ़ी, चारित्र बढ़ा, तो उस समय उसका ज्ञान भी है, सम्यक्चारित्र भी है, तो उस समय सम्यग्ज्ञानमें जो कि परमार्थ चारित्रसे युक्त है उसमें कर्म न आने देनेकी भी सामर्थ्य और कर्मोंका क्षय करनेकी भी सामर्थ्य है। जैसे गर्मीका स्पर्श है। बड़ी ठंड बढ़ रही हो और वहां अंगीठी या हीटर रख दिया, बहुत तेज कोई गर्मीका साधन रख दिया तो उस गर्मीके स्पर्शमें दोनों ही सामर्थ्य हैं--निकट भविष्यमें भी शीतको न आने दे और वर्तमान शीतको भी नष्ट कर दे। तो जैसे उस उष्णस्पर्शमें दोनों ही सामर्थ्य हैं इसी प्रकार इस चारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञानमें, ये दोनों ही सामर्थ्य हैं कि आगामी कालमें बधने वाले कर्म भी न आयें और पूर्वबद्ध कर्मोंको भी खिरा दे।

अनेकान्तवादमें ही सम्यग्ज्ञानसे कर्मोच्छेदकी सिद्धि—सम्यग्ज्ञानसे कर्मानुत्पत्तिकी बात सुनकर शङ्काकार कहता है कि इसमें एक बात तो तुमने हमारी ही कह दी कि तत्त्वज्ञानमें यह सामर्थ्य है कि भविष्यमें कर्म नहीं बंधते, धर्म अधर्मकी उत्पत्ति नहीं होती। आचार्य कहते हैं कि तुम तो यह भी सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि यह बात वहां ही सिद्ध हो सकती है कि जहां जीव और अजीव पदार्थमें नित्य और अनित्यपनेका यथार्थ ज्ञान हो जाय। पदार्थ द्रव्यदृष्टिसे नित्य है पर्याय-दृष्टिसे अनित्य है। जीव सदा रहेगा ना, वह हुआ द्रव्य और जीव कभी मनुष्य होता, तिर्यञ्च होता, नारक आदिक होता, कभी क्रोधी बनता, मानी बनता, मायावी बनता लोभी बनता, इस तरहके अनेक भेद हैं, तो देखो पर्यायदृष्टिसे अनित्य हुआ जीव। जीव किसी भी एक अवस्थारूप बनकर नहीं रह सकता। यही तो अनित्यपनेकी बात है। तो जहाँ कथंचित् नित्य कथंचित् अनित्य रूप प्रतिपादन है वहाँ ही सम्यग्ज्ञान बन सकता है। पहिले तुम सत्यज्ञानकी सिद्धि कर लो पीछे सम्बरकी बात कहना। एकांत नित्य तुम्हारा कल्पित आत्म पदार्थ है, उसमें कुछ बिगाड़ तो है नहीं। उस ही की चीज, उस ही की परिणति कभी आए कभी न रहे, यह बात एकाँत नित्यमें तो बन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं सकती, तो फिर वहाँ फल ही क्या कर्म भी क्या, कर्मका कारण भी क्या ? कुछ भी सम्भव नहीं है। उसका न संसार बन्धन न मोक्ष। यदि अनित्य ही अनित्य सर्वथा माना जाय तो वहां भी कोई व्यवस्था नहीं बनती। जो विपरीत अर्थका ग्रहण करने वाला ज्ञान है क्या वह तत्वज्ञान हो सकता है ? और, विपरीत पदार्थको जानने वाले ज्ञानमें क्या यह सामर्थ्य है कि आगामी कर्म भी न आयें ? ये सब बातें एक सम्यग्ज्ञानमें ही घटित हो सकती हैं मिथ्याज्ञानमें नहीं। जिसे शङ्काकार तत्वज्ञान कह रहा है वह तो मिथ्याज्ञान है उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक वस्तुके यथार्थस्वरूपका सम्यग्-ज्ञान हो और उस सम्यग्ज्ञानकी स्थिरता हो कि यह आत्मा अपने आत्मामें ही रम जाय ऐसा परम ध्यान बने तो उसमें यह सामर्थ्य है कि आगामी कर्मोंका बन्ध भी न हो और पूर्वसंचित कर्मोंका क्षय भी हो जाय। पर इस विशेषवादमें चूंकि फलके भोगनेको ही कर्मका क्षय माना गया है, तो जब फलका भोग होगा उस समय मन, वचन, कायकी चेष्टायें होंगी, रागद्वेष होंगे, सुख-दुःख होंगे, तो फिर उन परिणामोंसे कर्म बंधेगे तो कैसे क्षय जल्दी हो जायगा ? परम्परा हो जानेसे क्षय होगा भी नहीं।

समाधिबलसे भावी समस्त शरीरोंका एक ही भवमें धारण व फलो-पभोगका पक्ष—शङ्काकार कह रहा है कि देखो कर्म जितने भी होते हैं वे तत्वज्ञानी के हों या मिथ्याज्ञानीके हों, कर्मोंका स्वभाव ही ऐसा है कि वे फल दिये बिना खिर ही नहीं सकते। यह शङ्का करना व्यर्थ है कि फिर तो परम्परा हो जानेसे कभी मोक्ष ही न होगा। बड़ा लम्बा समय लग जायगा और उसमें भी वह भोगोंमें नवीनकर्मोंका बन्ध करेगा यह शङ्का करना यों युक्त नहीं है (शङ्काकार अपने सिद्धान्तसे कह रहा है) कि जिस समय तत्त्वज्ञानी पुरुषको समाधि प्राप्त होती है तो उस समाधिके बलसे जिसके तत्त्वज्ञान उत्पन्न हुआ है उसने समझ ली न कर्मोंकी सामर्थ्य, कर्म फल दिए बिना खिरते नहीं, तब वह करता क्या है कि जितने शरीर उसे पाने पड़ेंगे उन सब शरीरोंको वे समाधिके बलसे यहीं पैदा कर लेते हैं और उन शरीरसे जो कुछ कर्मोंका भोग करते थे वे सारे भोग उपभोग यहीं पा लेते हैं तो बड़ी जल्दी कर्मोंका क्षय हो जाता है और संसार फिर उसका नष्ट हो गया, मुक्ति हो गयी। क्योंकि, अगले कर्मों की उत्पत्तिका कारण तो है मिथ्याज्ञानसे उत्पन्न होते हैं रागद्वेष। तो रागद्वेष उस तत्त्वज्ञानीके नहीं हैं उस समाधिमें, उस ध्यानमें। और, शरीर सारे उसने यहीं पा लिये तो कर्म तो दूर हो गए। भोग तो मिल गए पर रागद्वेष न होनेसे कर्मोंका बन्ध नहीं कर सका क्योंकि जितने भी बन्धन होते हैं वे अनुसंधानसे होते हैं। अनुसंधानके मायने है रागद्वेष। अब मिथ्याज्ञान जब नष्ट हो गया तो अभिलाषा तो रहा नहीं। जब अभिलाषा न रही तो कर्मबन्धन नहीं हो सकते। ऐसी भी शङ्का करना युक्त नहीं है कि उस तत्त्वज्ञानीके उन अनेक शरीरोंका कैसे उपभोग हो जायगा, क्योंकि कर्मोंके क्षय करनेकी वाञ्छा है तो उसे यहाँ सारे शरीरोंका उपभोग पाना पड़ेगा। तब उसके कर्म दूर हो सकेंगे। जैसे कोई रोगी ही है, कड़वी होनेके कारण उसकी इच्छा नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि मैं इस औषधिको खाऊं पर उसे खाना पड़ता है तब उसका रोग दूर होता है इसी तरह जिसे पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा करना है उसे समस्त कर्मोंका फल भोगना होगा तभी पूर्वबद्ध कर्म निर्जराको प्राप्त हो सकेंगे।

फलोपभोगके एकान्तमें कर्ममुक्तिका अनवकाश—अब शङ्काकारकी उक्त बातका उत्तर आचार्य देव देते हैं कि वाह तुम्हारे ग्रन्थोंमें तो यह भी लिखा है कि जैसे बहुत बड़ा भारी ईंधनका ढेर हो तो अग्नि सारे ईंधनको क्षण भरमें जला देती है, भस्म कर देती है इसी प्रकार तत्त्वज्ञानकी अग्नि सारे कर्मोंको क्षण भरमें जला देती है। शङ्काकारका यह कहना है कि जब तत्त्वज्ञान हो जाता है तो इच्छा न रहकर भी सारे शरीरोंको यहीं अपनी समाधिमें उत्पन्न करता है और उन सबका फल भी भोगता है और उस भोगसे कर्म दूर होते हैं। तो इसके मायने यह नहीं हुआ कि इच्छाके, बिना भी रागादिकके बिना भी शरीर धारण कर लिया, कर्मफलको भोग लिया। रागके बिना स्त्री आदिकका उपभोग वहाँ सम्भव नहीं है, क्योंकि कर्म तो फल दिए बिना नष्ट नही होते, और कर्म कुछ ऐसे पड़े हैं कि पञ्चेन्द्रिय विषयोंका भोगना ही उसका फल है सो उस समाधिमें यदि विषयोंका उपभोग भी करते हैं स्त्री का उपभोग करते हैं तो ऐसे अत्यन्त भोग करने वाले जो कि आशक्तिके बिना सम्भव नही गृद्धिमान हो गए। फिर तो उन योगियोंके पुण्य पापका आना बराबर सम्भव है। जैसे यहाँ राजा लोग जो अति भोगी हैं उनके कर्म लदते हैं कि नही? लदते है। इसीप्रकार उस तत्त्वज्ञानी योगीने भी तपश्चरणके बलसे सारे शरीरोंके ऐब भोग डाले शरीरसे जो जो विषयसेवन करने थे वे सब विषय एक ही भवमें यहां कर डाले तो वह तो अत्यन्त भोगी हुआ। उसके कर्म न आयें यह कैसे सम्भव है? और भी देखो जैसे वह रोगी वैद्यके बताए अनुसार औषधिका सेवन कर रहा है तो इच्छा है तभी तो कर रहा है, उसे निरोग होनेकी अभिलाषा है तभी तो वह रोगी वैद्यका उपदेश मानता है और औषधिका सेवन करता है, केवल ज्ञान मात्रसे औषधिसेवनमें प्रवृत्ति तो नहीं करता, इसी प्रकार जितने भी फल भोगे जायेंगे उस तत्त्वज्ञानीके भी इच्छा है सो उन फलोंके भोगमें कर्मोंका बन्ध सम्भव है। कौन इसे मानेगा कि कोई स्त्री सेवन कर रहा, अनेक राग रागनी सुन रहा, इतने सारे फलोंको भोग रहा है और उसके कर्मबन्ध न हों इसे कौन मान लेगा?

दृढ़ सम्यग्ज्ञानके बलसे कर्मोंका प्रक्षय व अनन्तचतुष्टयस्वरूप मोक्षका लाभ—सम्यक् तत्त्वज्ञानमें स्वयं ऐसी सामर्थ्य है कि उन कर्मोंको बदल करदे, उनकी शक्ति नष्ट करदे। तो यह कहना युक्त नही कि तत्त्वज्ञानीके भी कर्मोंके उपभोग से कर्म दूर होते हैं। तो फिर कर्म कैसे दूर होते हैं? सम्यग्ज्ञान हो जैसे कि स्याद्वाद के द्वारा निर्णीत होता है, आत्माका सही ज्ञान कोई जान ले जैसा कि अपने स्वरूपसे है ज्ञानमय, आनन्दमय और उस सहज ज्ञानानन्दकी उपासना करे तो उससे जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थिरता आती है उसमें यह सामर्थ्य है कि आगे कर्म भी न आयें और पहिलेके संचित कर्म भी नष्ट हो जायें। तो न यहां शङ्काकारका तत्त्वज्ञान बनता है, न कर्मोंके क्षयकी विधि बनती है तो मोक्ष भी नही बनता। फिर यह कहना कि ज्ञानादिक गुणोंका जहाँ अभाव होता है उसका नाम मोक्ष है यह तो गलत बात है। मोक्ष नाम है अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्तशक्तिका विलासकरनेका व इस ही पावनस्वरूपमें ठहर जानेका।

कर्मप्रक्षयके कारण बतानेमें तत्त्वज्ञान व फलोपभोगके कथनकी परस्पर विरुद्धता —शङ्काकार वैशेषिकका यहां यह मन्तव्य है कि आत्मा सत् न्यारी चीज है और ज्ञानादिक गुण सत् न्यारे हैं। आत्मामें ज्ञानादिक गुणोंका सम्बन्ध जुड़ता है और सम्बन्ध जुड़ जानेपर यह जीव अपनेको समझता है कि मैं ज्ञान वाला हूँ, देह वाला हूँ, बस इस बुद्धिसे संसारमें भ्रमण होता है। जब इसे तत्वज्ञान हो जाता है तो तत्त्वज्ञान होनेसे यह मिथ्याज्ञान दूर हुआ। ज्ञानको आत्मा माननेका भ्रम था वह दूर हुआ। देहको भी आत्मा माननेका भ्रम दूर हुआ तो इस मिथ्याज्ञानके नष्ट हो जानेसे रागादिक नहीं रह सकते। रागादिक न होनेसे आगामी कालके लिए कर्मोंका बन्धन नहीं हो पाया। अब जो कर्म बंधे हुए हैं जिनकी स्थिति करोड़ों कल्पों तककी है वे कर्म उपभोगसे दूर होते हैं, और तत्वज्ञानी पुरुष ऐसा समाधिबल लगाता है कि करोड़ों शरीर जो आगे धारण करना पड़ते थे वे सब एक ही भवमें पा लेता है और उन शरीरोंसे जितने फल भोगने थे वे फल अभी भोग लेता है। इस तरह एक ही भवमें समस्त शरीरोंको पा लेता है और उनके फल भोग लेता है। और उनके फलको भोग लेता है। और ऐसा कर्मक्षय होनेके बाद फिर ज्ञान भी अलग हो जाता है। ज्ञानादिक गुणोंसे शून्य होनेपर ही मोक्ष अवस्था कहलाती है। शङ्काकारके अभिमत ग्रन्थमें यह भी कहा गया है कि जैसे जाज्वल्यमान अग्नि बहुतसे ईंधनको क्षण भरमें भस्म कर देती है इसी प्रकार तत्त्वज्ञानरूपी अग्नि समस्त कर्मोंको क्षण भरमें भस्म कर देती है। तब यहाँ दो परस्पर विरोधी बातें आ गयी। एक मंतव्यके अनुसार तो कर्मफल भोगे बिना नष्ट नही हो सकते और एक इस मन्तव्यमें ज्ञान अग्नि सब कर्मोंको क्षण भरमें भस्म कर देती है तो ये दोनों विरोधी अर्थ वाले मन्तव्य हैं। इन दोनोंका एक मोक्षके उपायके सम्बन्धमें प्रमाणता कैसे होगी? ये तो परस्पर विरोधी वचन हैं।

तत्त्वज्ञान और फलोपभोगको कर्मक्षयका हेतु कहनेके परस्पर विरोधके परिहारका प्रयत्न —अब यहां शङ्काकार कह रहा है कि ये दोनों वचन विरोधी नही हैं। भोगनेसे कर्मोंका क्षय होता है यह तो है मुख्य सिद्धान्त, और जो यह कहा गया है कि ज्ञान अग्निसे कर्म क्षण भरमें भस्म होते हैं यह है औपचारिक कथन। कैसे कि जिन ज्ञानी पुरुषोंने कर्मोंकी सामर्थ्य जान ली। कर्म बंधे हैं तो ये यों यों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फल भोगनेसे छूटेंगे, वे ज्ञानी पुरुष आगामी मिलने वाले समस्त शरीरको उत्पन्न कर लेते हैं और उन शरीरोंके द्वारसे सब कर्म फलोंको भोगकर विनष्ट कर देते हैं तो आखिर समस्त शरीरोंको पा लेना और उनका फल भोग लेना यह बात करनेकी प्रेरणा इस तत्वज्ञानसे ही तो मिली है, इसलिए उस तत्वज्ञानसे तो एक बोध मिला कि इस तरहसे कर्मोंको भोग करके क्षय किया जायगा और फिर कर्मोंको भोग करके क्षय कर डाला तो आखिर मूल बात तो तत्वज्ञानसे हुई, इस कारण साक्षात् तत्वज्ञान से कर्मोंका क्षय न होनेपर भी तत्वज्ञानकी प्रेरणा पाकर फलोपभोगसे कर्मोंका क्षय किया गया। अतः तत्वज्ञानसे कर्मक्षयका कथन किया जाता है। इसलिए इस आगमसे कोई विरोध नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि तत्वज्ञानी पुरुषोंके कर्मोंका क्षय तो तत्वज्ञानसे होता है और अन्य लोगोंके कर्मोंका क्षय कर्मोंके उपभोगसे होता है क्योंकि ज्ञानसे ही कर्म नष्ट हो जायें, इसमें न कोई युक्ति है, न कोई उदाहरण है। हाँ फलोंके भोगसे कर्मोंका क्षय होता है इसके आगममें बहुत जगह कथन हैं।

फलोपभोगसे निर्वाणकी असंभवता और प्रवल तत्त्वज्ञानसे निर्वाणकी संभवता—शङ्काकारके उक्त उपालम्भपरिहारके सम्बन्धमें आचार्यदेव कह रहे हैं कि एक आगमके कथनको तोड़ मरोड़ करके उपचारकी बात कहना, यह केवल हठकी ही बात है। तत्वज्ञानमें सामर्थ्य है ऐसी कि संचित कर्मोंका क्षय हो जाता है। जो तत्वज्ञान इतना निर्मल बनता है कि जिसमें स्वयंकी स्थिरता आ चुकती है, जिस परम सम्बरका रूप धारण किया है ऐसी स्थितिमें जो चारित्र उत्पन्न हुआ ऐसे उस सम्यक चारित्रसे बढ़े हुए सम्यग्ज्ञानके उत्कर्षमें समस्त कर्मोंके क्षय करनेका सामर्थ्य है ही, इसमें कोई विरोध नहीं। हाँ, यह बात विरुद्ध है कि समस्त शरीरोंको उत्पन्न करके उन शरीरोंके द्वारा सारे भोगविषय करके उन कर्मोंका क्षय किया जाता है, इसमें विरोध है क्योंकि उपभोग रागके बिना नहीं किये जा सकते और फिर उन शरीरोंके द्वारा उपभोगमें ऐसे ऐसे भी तो उपभोग शामिल हैं कि स्त्रीसेवन करना, दूसरेकी हिंसा करना, जो जो कुछ भी काम आगे करना था वह इस तत्वज्ञानीने समाधिबलसे इस ही भवमें विषयसेवन आदि किया है तो वह इच्छाके बिना नहीं होता और इच्छा से कर्मोंका बंध होगा, वह परम्परा चल गयी, उसमें मोक्ष नहीं हो सकता है। तो जन्मान्तर उत्पन्न न हो, नये कर्म न बँधे इसका कारण फलोंका भोग नहीं है किन्तु प्रबल तत्वज्ञान ही है। जिसके परिपूर्ण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र उत्पन्न हो गया है उस आत्माके नवीन कर्म नहीं बंधते और बंधे कर्म नष्ट हो जाते हैं।

मोक्षका हेतु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यात्मक विशुद्ध भाव—मोक्षका कारण तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका एकत्व है. इस त्रितयात्मक कारण से ही जीवमुक्ति होती है, तथा शरीररहित हुआ जो परमात्मतत्व प्रकट होता है वह भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे होता है अर्थात् परममुक्ति भी सम्यग्दर्शन,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे होती है। जैसे संसारका कारण भी केवल मिथ्याज्ञान नहीं वैसे मोक्षका कारण भी केवल सम्यग्ज्ञान नहीं है। जिसमें सम्यक्चारित्र उद्बृंहित हुआ है ऐसा जो रत्नत्रय भाव है वह मोक्षका कारण है। यदि सम्यग्दर्शनसे ही मोक्ष बनता है तो उसमें यह विशेषण लगाना होगा कि परम सम्वररूप चारित्रसे बढ़ा हुआ जो सम्यग्ज्ञान है वह मोक्षका कारण है। संसारका कारण भी केवल मिथ्याज्ञान नहीं है, किन्तु मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र यह त्रितय संसारका कारण है। एक ही सम्यग्ज्ञान मात्रसे मुक्ति नहीं हो पाती है। जहाँ ऐसा कथन भी आता है अध्यात्मविषयमें कि ज्ञानसे मुक्ति होती है उसका भाव ऐसा लेना है कि परम प्रकर्ष प्राप्त सम्यग्ज्ञानसे मुक्ति होती है। वह परमप्रकर्षता क्या है ? परमसम्वररूप सम्यक चारित्रकी साधनासे बढ़ी हुई वृत्तिरूप है, अर्थात् भाव उसका यह निकलता है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे मुक्ति होती है और जिस साधनसे मुक्ति पायी, जिस आत्माके उपायसे मुक्ति पायी, फिर वह उपाय वह स्वरूप मुक्तिमें समाप्त हो जाय यह नहीं हो सकता। यह सम्यक्त्व यह सम्यग्दर्शन, यह सम्यक्चारित्र जो मोक्षके कारणभूत हैं वे उत्कृष्टरूपसे मोक्षमें भी विद्यमान रहते हैं यह कहना युक्त नहीं कि ज्ञानादिक गुणोंका विनाश होनेसे मोक्ष होता है।

शङ्कापरिहार करते हुए वैशेषिक द्वारा फलोपभोगसे कर्मक्षय होनेका समर्थन – अब इस प्रसङ्गमें नैयायिक विशेष बीचमें कह उठते हैं कि मिथ्याज्ञानसे जो संस्कार उत्पन्न होता रहा था उस सहकारी संस्कारका अभाव होनेसे विद्यमान भी कर्म जन्मान्तरमें अन्य शरीरके उत्पन्न करने वाले नहीं होते, फलोपभोगसे कर्म विफल होते हैं यह बात सही नहीं है. किन्तु मिथ्याज्ञान नहीं रहा, मिथ्याज्ञानजनित संस्कार नहीं रहा तो विद्यमान भी नहीं रहे आयें कर्म तो भी वे जन्मान्तर करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। उनकी इस शङ्काके समाधानमें इस समय वैशेषिक ही उत्तर दे रहा है। यों समझिये कि जैसे किसीकी शङ्काका समाधान किसी दूसरे शकाकारके द्वारा करा दी जाती है तो वह अपना ही तो समाधान हुआ। जैसे जहां बहुत विवाद करने वाले लोग हैं उनमेंसे एकने विवाद उठाया तो अन्य विवाद उठाने वाले कोई यदि उसके विवादका, उसके अभिप्रायका खण्डन करे तो सबकी ओरसे ही खण्डन समझना चाहिये। क्योंकि जो शंका की गई है उसका निराकरण अन्य सब वादियोंको इष्ट है तो वैशेषिक उत्तर दे रहे हैं कि यह कहना युक्त नहीं है कि विद्यमान कर्म भी रागादिक उत्पन्न नहीं करते, क्यों युक्त नहीं कि उन कर्मोंने यदि अपना कार्य उत्पन्न नहीं किया तो कर्मोंका क्षय हो ही नहीं सकता। फिर तो कर्म नित्य हो जायेंगे, फिर कभी मुक्ति हो ही नहीं सकती। इससे मानना चाहिये कि कर्मोंके भोगसे ही कर्मक्षय है।

नित्यनैमित्तिक अनुष्ठानके प्रयोजनका प्रश्न – वैशेषिकोंके प्रति अब नैयायिक अथवा अन्य कोई प्रश्न करते हैं कि जब यह निर्णय तुमने बनाया कि कर्मों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का क्षय कर्मोंके भोगसे ही हो सकता है तो फिर नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान किसलिए किया जाता है। याने तत्वज्ञानी बननेके बाद भी स्वाध्याय, अध्ययन आदिक करना, अन्य अन्य आत्माकी युक्तिका साधन करना आदिक जो अनेक नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान हैं वे किसलिए किए जाते हैं क्योंकि भावी कर्मोंकी अनुत्पत्ति तो तत्वज्ञानसे हो गयी, सो कर्म बँधनेका डर तो रहा नहीं, अब जो कर्म रह गए हैं वे उपभोगसे दूर होंगे, फिर तत्वज्ञानी बननेके बाद फिर नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान किसलिए किया जाता है ? गुरुके पास रहना, शिक्षा लेना, प्रायश्चित्त लेना, दोषनिवारण करना, इससे भी ऊंचे काम ये सब क्यों अनुष्ठान किये जा रहे हैं ?

तत्त्वज्ञानी होनेपर भी नित्यनैमित्तिक अनुष्ठान किये जानेका शङ्काकार द्वारा उत्तर —उक्त शङ्काका वैशेषिक उत्तर देते हैं कि वे सब दुष्कर्मोंके दूर करनेके लिए किये जा रहे हैं। यहाँ यह शङ्का न करें कि "जब तत्त्वज्ञान हो गया तो दुष्कर्म तो मिट ही गए थे, अब कौनसे दुष्कर्म रह गए जिनके मेटनेके लिए ज्ञानी पुरुषोंको भी तपश्चरण आदिक नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान करने पड़ते हैं।" सुनिए— वे दुष्कर्म क्या हैं ? वे पहिले जैसे तो नहीं हैं, उन दुष्कर्मोंका तो अभाव हो चुका, क्योंकि विपर्यय ज्ञान नहीं रहा। सो जो निषिद्ध आचरण हैं—दूसरेकी हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कुशील करना, परिग्रहोंका संचय करना आदिक, उनके परिहारके लिए तत्त्वज्ञानी नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान नहीं करता, वे तो तत्त्वज्ञानके बलसे पहिले ही दूर हो गए लेकिन तत्त्वज्ञान होनेपर जो कार्य किए जाने चाहिए, जो अनुष्ठान किये जाने चाहिए उनमें कोई दोष लग जाय तो उसके लिए वह प्रायश्चित आदिक अनुष्ठान करता है क्योंकि यदि अनुष्ठान करे, धर्मकार्य न करे, व्यवहार धर्म न करे तो ये दोष दूर नहीं होते। आगममें भी लिखा है। वैशेषिक कहते जा रहे हैं कि जो स्वर्गोंकी इच्छा करता है वह इन यज्ञ आदिकको करता है, पर जिसे मोक्षकी इच्छा है वह इन यज्ञ आदिकमें वृत्ति नहीं करता, किन्तु जो भी अनुष्ठान करता है बस मोक्षके लिए करता है। जो भी योग साधनायें मोक्ष साधनाके लिए किए जाने चाहिए, की हुई गल्तियोंकी आलोचना करना, तपश्चरण करना, भक्ति करना आदिक वे सब नित्य नैमित्तिक क्रियायें किया करता है। क्योंकि निर्वाण क्या है ? कैवल्यका नाम निर्वाण है। केवल रह जाए, अकेला आत्मा रह जाय, उसमें ज्ञान भी न रहे, खाली करना है ना, जैसे खाली घड़ा। उसमें पानी या अन्य कोई चीज न रहे वह खाली हो गया। इसी प्रकार वैशेषिक सिद्धान्तका निर्वाण ऐसा खाली माना गया है कि जहां समस्त गुणोंका उच्छेद हो जाता है। ऐसा केवल आत्मा ही आत्मा रहे वह निर्वाण है, ऐसे निर्वाणके लिए जो तपश्चरणके विधान बताए गए हैं उनमें दोष आ जाय तो उन दोषोंके दूर करनेके लिए ये अनुष्ठान किए जाते हैं।

गुणोच्छेदरूप निर्वाणकी अनित्यताकी शङ्काका परिहार करते हुए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शङ्काकार द्वारा फलोपभोगसे कर्मक्षय होनेका समर्थन—विशेषवादी कह रहे हैं कि इस प्रसङ्गमें कोई यह शङ्का न करे कि तत्त्वज्ञानसे मिथ्याज्ञानका प्रध्वंस होता और मिथ्याज्ञानके प्रध्वससे होता गुणोच्छेद विशिष्ट आत्मस्वरूपका निर्वाण, तो यह तो तत्त्वज्ञानका कार्य है और जो जो कार्य होते हैं वे सब अनित्य होते हैं। सो यह गुणोच्छेदरूप निर्वाण अनित्य है, ऐसी शङ्का न करो क्योंकि तुम किसको अनित्य बताना चाहते हो ? उन ज्ञानादिक गुणोंके अभावको अनित्य बताना चाहते हो या तद्विशिष्ट आत्माको ? गुणोच्छेदको अनित्य नहीं कह सकते क्योंकि वह तो अभाव-रूप चीज है प्रध्वंसाभावमें नित्य अनित्यका प्रश्न नहीं उठा करता है वह तो तुच्छा-भावरूप है। अभाव मायने कुछ नहीं। अब उनमें कहना कि नित्य है अथवा अनित्य है, यह तो प्रलाप है। यदि कहो कि जिस आत्माका निर्वाण होता है, उस आत्माके गुणोंका विनाश होता है सो उस गुणोच्छेदसे विशिष्ट आत्मामें अनित्यता है, यह कहना यों युक्त नहीं है कि हम आत्मा और ज्ञानको एकमेक मानते होते तो गुणोंके अभावसे आत्माका अभाव माना जा सकता था। पर उनका तो अत्यन्त भेद है आत्मा तो केवल चिन्मात्र निराला है और ज्ञानादिक गुण ये सब प्रथक् सत् हैं इस कारण हमारे मंतव्यमें यह दोष नही आता। अब प्रसङ्गकी बात सुनिए – नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान तो ये मोक्षमार्गपर चलनेपर जो दोष उत्पन्न होते हैं उनको दूर करनेके लिए किये जाते हैं, कर्मक्षयके लिए नही किए जाते, अतः यह बात यहां सिद्ध होती है कि कर्मोंका क्षय होता है वह फल भोगनेसे ही होता है, फल भोगे बिना कर्म दूर नहीं होते।

नयवादसे तत्त्वज्ञानमें और नित्यनैमित्तिक अनुष्ठानमें कर्मक्षयकी हेतुता—अब वैशेषिककी इस शङ्काका उत्तर आचार्यदेव देते हैं कि मोक्ष कहलाता है केवल ज्ञानस्वरूप। गुणोच्छेदका नाम तो मोक्ष है ही नही। जहाँ ज्ञानका परिपूर्ण विकास हो जाता है मोक्ष, तो उस मोक्षकी प्राप्तिका कारण, केवलज्ञानकी प्राप्तिका कारण तत्त्वज्ञान कहना वह भी उचित है। नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान कहना भी उचित है। सब नयवादोंसे दृष्टियाँ उनकी लगाकर सबको सिद्ध किया जाना चाहिए। जो तत्त्वज्ञान सम्यग्ज्ञान सम्यक् चरित्रसे बढ़ा हुआ है चारित्र सहित है, जो कि चारित्र नित्यनैमित्तिक अनुष्ठानसे परिपूर्ण किया गया है उस तत्त्वज्ञानसे मुक्ति हुई। इसमें नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान, व्रत संयम त्यागकी भी बात आ गयी और तत्त्वज्ञानकी भी बात आ गयी। तो इन चारित्र रूप विधियोंसे तो मोक्ष होता पर फल भोगसे मोक्ष होता है यह बात युक्त नहीं जचती। वैसे भी मोटेरूपमें यह सब कोई जान सकेगा कि कि यदि कर्म फल देकर ही नष्ट होता है तो फल दिया और फलके समयमें होगा क्या ? रागद्वेष हो, इच्छा हो, क्लेश हो। अगर ये न हों तो फल नाम किसका ? तो इसके होनेसे नवीन कर्मबन्धन होता, वे नवीन कर्म फल दिए बिना नष्ट नहीं हो सकते। फिर फल मिले, फिर कर्म बंधे, वहां मुक्तिका अवसर नही है इसलिए यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मानना ही होगा कि एक विशिष्ट सम्यग्ज्ञानसे फलका भोग किए बिना ही कर्मका प्रक्षय हो जाता है। जो कर्म बाँधे उनकी स्थिति यद्यपि अनेक सागरों पर्यन्त हैं, असंख्य ते वर्षोंकी स्थिति है पर चारित्रसे उपवद्धित सम्यग्ज्ञानमें ऐसी सामर्थ्य है कि जिनकी स्थिति बहुत पड़ी हुई है उनको भी बहुत पहिले समयमें लाकर कुछका अबुद्धि पूर्वक फल पा करके भी उदय पाकर भी, कुछका उदय पाये बिना भी बदल करके, संक्रमण करके उन कर्मोंका क्षय कर दिया जाता है। जिस समय कर्मबन्ध होता है उस समय उन कर्ममें यह बात नहीं पड़ी हुई है, ऐसी योग्यता नहीं है कि वह आगामी कालमें संक्रमणको प्राप्त होगा, फिर दूर होंगे तो ऐसी बात अभीसे पड़ गई हो कर्म बन्धक समयसे हो यह बात नहीं है, क्योंकि अचलावलीमें अन्य योग्यता आती ही नहीं हैं। हाँ बन्धावली व्यतीत होनेके बाद उस ही कर्ममें क्या, सभी कर्मोंमें योग्यता है ऐसी, एक कुछ निकाचित जैसे बन्धको छोड़कर कि वह समयसे पहिले निर्जीर्ण हो सकता है। तो फलके भोगसे ही कर्मोंका क्षय होता है यह बात युक्त नहीं है।

आत्माकी विशुद्ध परिणतिसे मोक्षमार्गका लाभ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र अर्थात् आत्मतत्त्वका यथार्थश्रद्धान, मैं किस स्वरूप हूँ, और उस हीका उपयोग, और उस हीमें स्थिरता, इस उपायसे कर्मोंका क्षय होता है। जब ज्ञानमात्र मैं हूँ इस प्रकारके अभ्याससे जिस अभ्यासका प्रारम्भ भेदविज्ञानके प्रसादसे हुआ है, ज्ञानमात्र स्वरूपमें मग्न होता है तब कर्मक्षय होता है। जब ज्ञानी पुरुषने यह जाना कि मैं तो शरीरसे भी निराला और अपने आपमें उत्पन्न होने वाले सारे विकल्प जालोंसे भी न्यारा केवल ज्ञातृत्वमात्र स्वरूप रखने वाला आत्मा हूँ अन्य सब पर हैं और अहितरूप भी है, किसी भी बाह्यपदार्थका समागममें यह अनुभव होता है कि बहुतसे अहितसे दूर हो गए, लेकिन कुछ उपयोग बदल गया, तो हम उसमें हितरूप विचार करते हैं वस्तुतः पर समागमोंसे जितना लगाव है चाहे अच्छासे अच्छा समागम है किन्तु लगाव मात्र अहितरूप है। उस लगावमें अच्छे समागमोंमें लगाव रखनेसे जो पहिलेसे बहुत लगाव आने आप मिट गए उसकी अपेक्षासे तो हित है पर लगाव मात्र अहित है। तो किसी भी बाह्यपदार्थके समागममें हित नहीं रखा है। जब भी पर पदार्थ कारण बनेगा। निर्विकल्प स्थितिका कारण पर द्रव्य नहीं बन सकता। हाँ इतना फर्क होगा कि जो धर्मके बाह्य साधन हैं देव शास्त्र गुरु आदिक उन आयतनोंका ख्याल करनेसे उनका ध्यान रखनेसे एक शुभ विकल्प बनता है, शुभोपयोग बनता है, और वह शुभोपयोग चाहे उस निर्विकल्प स्थितिके निकट पहुँचा दे, लेकिन निर्विकल्प स्थितिके समय किसी भी परद्रव्यमें दृष्टि नहीं रह सकती है। पर द्रव्यका आश्रय करना तब तक है जब तक निर्विकल्पता नहीं रह सकती है। तब जितने भी बाह्यपदार्थ हैं इनका समागम हितरूप नहीं है, परिजनका समागम भी हितरूप नहीं है, वे अपने ही भुलावापथमें ले जानेके ही कारण बनते हैं। यह शरीरका समागम भी हितरूप नहीं है। और, अपने अन्तः उत्पन्न होने वाले विकल्प विचार रागद्वेषा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दिक विभाव ये भी आत्माका अहित कर रहे हैं। ये सारे विकारदाह इस चैतन्य भूमि को बंजर कर रहे हैं, जहां फिर उस शान्ति आनन्दका विकास नहीं हो सकता, जहां शान्ति आनन्दके अंकुर नहीं जम सकते, ऐसी स्थिति कर डालते हैं विभाव, सो ये रागादिक विभाव भी हितरूप नहीं हैं।

स्वद्रव्यके आश्रयसे ही निर्विकल्प समाधिकी सिद्धि—किसी भी परतत्वका लगाव चाहे वह औपाधिक स्वविभाव हो अथवा एकदम परद्रव्य हो किसीका भी लगाव आत्माके हितरूप नही है। मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानमात्र हूँ इस प्रकारकी निरन्तर भावना रखनेसे ज्ञानमात्रका अनुभवन होता है। वहां केवल जाननमात्र ही अनुभवमें रहता है उस स्थितिको पानेके साथ ही सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाता है और फिर यही ज्ञान स्थिर रहे ऐसा ही उपयोग निरन्तर बना रहे, ज्ञानमें ज्ञान समाया रहे, आत्मस्वरूपमें ज्ञान रमा रहे इस प्रकार आन्तरिक शुद्ध आचरण बने तो वहां कहलाता है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका बर्तना। ऐसे इस त्रितयात्मक उपायसे मोक्ष होता है। कर्मोंसे छुटकारा हो नहीं सकता। इससे यह बात मान कर इस प्रयत्नमें चलना चाहिए कि हम अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धान करें, उपयोग बनायें और इस ही प्रकारके ज्ञानमें अपनेको रमायें यही रत्नत्रय मोक्षका उपाय है।

गुणोच्छेदरूप मोक्षकी चर्चाका मुख्य प्रसङ्ग—आत्माका सर्व कल्याण मोक्षमें है। संसारके संकटोंसे छुटकारा हो जानेमें ही आत्माकी भलाई है। इस मोक्ष का स्वरूप क्या है? इसके सम्बन्धमें यहां चर्चा चल रही है। सिद्धान्त तो यह है कि आत्मा ज्ञान दर्शन सुख शक्ति आनन्दस्वभावी है। तो उसके इन गुणोंका पूर्ण विकास हो जाय इसका नाम मोक्ष है। मोक्ष शब्दका अर्थ यद्यपि छुटकारा है, सर्व परभावोंसे सर्व परद्रव्योंसे, बन्धनोंसे छुटकारा होनेका नाम मोक्ष है। पर मोक्ष होनेपर आत्मा की क्या अवस्था रहती है. इस बातपर यहां कुछ विवाद चल रहे हैं। तो सिद्धान्त तो यह है कि अनन्त चतुष्टयस्वरूप लाभ होना इसका नाम मोक्ष है, इसके विरोधमें वैशेषिकोंने यह बताया कि आत्मामें ज्ञान आनन्द आदिक कोई कभी न रहें, खाली चैतन्य मात्र आत्मा रहे उसका नाम मोक्ष है। तो वैशेषिक सिद्धान्तमें अभिमत मोक्षका स्वरूप यह है कि जहां ज्ञानमें समस्त गुण नष्ट हो जाते है। केवल आत्मा रह जाता है उसका नाम मोक्ष है। तो केवल आत्माका रह जाना यह तो ठीक है पर ज्ञानादिक गुणोंको वे आत्माका स्वरूप नहीं मानते संसार अवस्थामें भी ज्ञानादिक गुण आत्माके स्वभाव नहीं हैं वे गुण स्वयं सत् स्वतंत्र हैं उनका सम्बंध आत्मामें जुड़ता है तब आत्मा ज्ञानी बनता है। संसार अवस्थामें भो ज्ञानस्वरूप आत्मा नहीं है जो ज्ञान आदि गुण लग गये थे आत्माके साथ दुःख पहुंचानेके लिए वे समस्त ज्ञानादिक गुण दूर हो गए इसका नाम मोक्ष है। इस सम्बन्धमें काफी प्रकाश डाला गया।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ब्रह्मस्वरूप आनन्दकी अभिव्यक्तिकी मोक्षरूपताका प्रस्ताव—अब इस ही प्रसङ्गमें एक भास्करीय वेदान्ती जो वेदान्तका ही एक प्रकार है बोलते हैं कि मोक्ष अवस्थामें चैतन्यका भी उच्छेद होनेसे बुद्धिमान लोग तो उसमें न लगेंगे इसलिए आनन्दस्वरूप मोक्ष माना जाना चाहिए। मोक्षमें आनन्द ही आनन्द रह जाता है और वही आनन्द आत्माका स्वरूप है और आनन्द रह जाना इसका नाम मोक्ष है। अथवा ज्ञानादिक गुण जैसे खतम किए वैशेषिक सिद्धान्तमें तो इसके मायने है कि अनुभवन सब समाप्त हो गया। वहाँ फिर कुछ जानना ही नहीं रहा। तो जब कुछ चेतना भी न रही, जानना भी न रहा तो ऐसे मोक्षको कौन बुद्धिमान चाहेगा? और वहाँ आनन्द गुण है ही। आनन्दस्वरूप ही आत्मा है। और उस आनन्दका जो चरम विकास है इसीका नाम मोक्ष है। यहां अनुमान बनाया जा रहा है भास्कर लोगोंके द्वारा कि आत्मा सुखस्वभावी है, क्योंकि अत्यन्त प्रियत्व बुद्धिका विषय होनेसे अर्थात् इस आत्मामें अत्यन्त प्यार है सब जीवोंका, यही आत्मा प्रिय है, ऐसी बुद्धि लग रही जीवोंकी। कैसी भी स्थितियाँ आयें उन सब स्थितियोंकी परवाह न करेंगे और अपने आत्माकी परवाह करेंगे।

आनन्दस्वरूप आत्माकी प्रियताका एक दृष्टान्त—जरा यह निर्णय करने आप बैठें कि लोकमें सबसे प्यारा कौन है? जिससे अधिक प्यारा और कुछ न कहलाये? तो कल्पनानुसार लोगोंके अपने मनमें जुदे-जुदे विचार बनेंगे। जब बालक साल डेढ़ सालका रहता है चल फिर भी नहीं सकता तब तक उस बच्चेसे पूछा जाय कि ऐ बच्चे! तुझे सबसे प्यारी चीज क्या लगती है? तो उस बच्चेका उत्तर होगा कि सबसे प्यारी चीज हमें अपनी माँकी गोद लगती है, इसके सिवाय अन्य कुछ भी प्यारी चीज नहीं लगती! तो ठीक है जब कोई उस बच्चे को छेड़ता है तो वह झट अपनी माँकी गोदमें पहुँचकर अपनेको पूर्ण सुरक्षित अनुभव करता है। वही बच्चा जब ४-५ वर्षका बालक बन जाता है तो उसे अब माँकी गोद प्यारी नहीं रहती, उसे प्यारे हो जाते हैं खेल खिलौने। वह खेल खिलौनोंमें रम जाता है। कोई पूछे—अरे बच्चे! तू तो कहता था कि मुझे माँकी गोद सबसे प्यारी है। क्या उठता कहनेका, अब तो उसे कोई जबरदस्ती माँकी गोदमें बैठाल दे तो वह बैठना नहीं चाहता। वहाँ से हटकर भगकर खेलनेकी ही सोचता है। तो अब उस बच्चेको माँकी गोद प्यारी नहीं रही। वही बालक बढ़कर जब १०-१२ वर्षका हो जाता है तो उससे कोई पूछे कि तुझे सबसे प्यारी चीज क्या है? तो वह कहेगा कि मुझे तो पढ़ना लिखना सबसे प्यारा है। जब कोई नई बात भाषा, हिसाब, इतिहास आदिकी जाननेको मिलती है तो उसे वही बातें प्रिय हो जाती हैं, अब उसे खेल खिलौने प्रिय नहीं रहते। वही बालक जब कुछ और बड़ा हो जाता है तो उसे प्रिय हो जाता है किसी भी प्रकारसे परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होना। उत्तीर्ण होनेके लिए वह परीक्षा-पुस्तिकाओंका पता लगाने में रहता कि कहां किसके पास गई हैं? किसीसे कह-सुनकर नम्बर बढ़वाने व पास

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होनेकी बात सोचता है। उसे अब परीक्षामें किसी न किसी प्रकारसे उत्तीर्ण हो जाना सर्वप्रिय हो जाता है। कुछ और बड़ा होनेपर उसे बी. ए. ऐम. ए आदिकी डिग्रियाँ प्रिय हो जाती हैं। जब बड़ा जवान होगया तो उसके मनमें व्याह शादीकी बात आती है, उसे अब स्त्री प्रिय हो गयी। कुछ समय व्यतीत हुआ संतान भी हो गयी, अब संतानपर दृष्टि अधिक हो गयी, स्त्रीपर अधिक दृष्टि न रही, अब तो उसे बच्चे सब से अधिक प्रिय हो गए। अब बच्चे भी हो गए, बहुत समय गुजर गया, अब वहाँ भी अधिक दृष्टि न रही अथवा उनके पालन-पोषणके लिए धनकी आवश्यकता है अतः उसे अब धन प्रिय हो गया। अब धनके अर्जन करनेमें अपना कदम रखा। मान लो अब वह ५०-६० वर्षका हो गया, अचानक घरसे फोन आया, घरमें आग लग जानेका समाचार मिला तो झट वह घरकी ओर भगता है। पहिले तो रास्तेमें मिलने वाले लोगोंसे बात भी कर लेता था, अब उसे उनसे बात करनेको भी फुरसत नहीं है। जब घर पहुँचा तो देखा कि आग बड़ी तेजीसे बढ़ रही है। बड़ी मुश्किलसे उसने अपने स्त्री पुत्रादिकको निकाला, धनको निकाला, बादमें एक बच्चा अभी नहीं निकल पाया, और आग बहुत तेजीसे बढ़ गयी तो वह किसी सिपाही से कहता है, भैया ! मेरे बच्चेको निकाल दो, हम तुम्हें १० हजार रुपए देंगे। लो देखो ! अब उसे अपने प्राण सबसे प्यारे हो गये बच्चा भी प्यारा न रहा। कुछ समय बाद उसके वैराग्य जगा, सब कुछ त्यागकर वह अपनी साधुवृत्तिमें रहने लगा, आत्माकी साधनामें बड़ा अभ्यास किया, आत्माके आनन्दका बड़ा अनुभव किया। ऐसी ही किसी स्थितिमें कोई शत्रु अथवा सिंह आक्रमण करे, उसकी जान ले तो अब वह पुरुष क्या करता है ? अपने आत्माकी दृष्टिमें रत रहता है, प्राणोंकी भी उपेक्षा करता है एक ज्ञानभाव ही उसे प्यारा हो गया। यह ज्ञान भाव मेरा एक समयको भी मत मिटे। अगर रंच भी विकल्प करके ज्ञानानुभवसे हटकर किसी बाह्यमें लग गए, उस शत्रुके अथवा सिंहके विकल्पमें लग गए अथवा यह भी विकल्प किया कि थोड़ी देरको चूंकि बलवान तो स्वयं है ही, इस शत्रुको अथवा सिंहको हटाकर फिर आनन्दसे ध्यान करूं इतना ही विकल्प बुरा है। यहां अभी ही विकल्प किये जा रहे हैं तो भविष्यमें क्या आशा है कि निर्विकल्प स्थिति पायेंगे। इतना भी विकल्प ठीक नहीं है, प्राण जायें तो जायें, ये तो पौद्गलिक प्राण हैं, ये तो भव भवमें मिले हैं। इन प्राणोंके मोहसे इस आत्माका क्या कल्याण है ? वह ज्ञानानुभवके लिए ही सारा यत्न कर रहा है। अब उसे प्राण भी प्यारे नहीं रहे। अब उसे क्या प्यारा हो गया ? अपना यह ज्ञानस्वरूप, स्वयंका आत्मा। अब इसके बाद कोई भी घटना ऐसी नहीं हो सकती जहां यह कहा जा सके कि लो अब अपना आत्मा भी प्यारा नहीं रहा, ज्ञानानुभव भी प्यारा नहीं रहा।

दो हेतुओंसे आत्माके आनन्दस्वरूपका समर्थन —भैया ! अत्यन्त प्रियत्व बुद्धिका विषय है यह आत्मा। अतएव यह आत्मा आनन्दस्वभावी है, जिसमें अत्यन्त प्रियताकी बुद्धि लगे, आनन्दरूप तो वही है, आत्माके आनन्दस्वरूपताका और भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दूसरा हेतु सुनो ! आत्मा सुखस्वभावी है, आनन्दस्वरूप है क्योंकि अनन्यपर होकर एकचित्त होकर यह आत्मा अपने द्वारा आपमें ग्रहण किया जाने वाला है। यद्यपि अनेक लोग स्त्री आदिकमें भी रुचि परिणाम रखकर उनको ग्रहण कर रहे हैं मगर अनन्यपर होकर स्त्री आदिकको भी ग्रहण नहीं किया करता कोई अपने आत्माको ही एक अनन्यपर होकर एक आत्माको आत्मामें ही लगानेरूपसे अपने स्वरूपको ही ग्रहण करता है अन्यको ग्रहण नहीं करता। इससे सिद्ध है कि आत्मा सुखस्वभावी है। जो अत्यन्तप्रिय बुद्धिका विषय होता है, जिसको अनन्यपरताके साथ ग्रहण किया जाता है वह सुखस्वभावी हुआ करता है। जैसे दृष्टान्तमें सांसारिक वैषयिक सुख ले लो, इन को लोग कितना अत्यन्त प्रिय मानते हैं और कैसा अनन्यपर होकर इन सुखोंका ग्रहण किया करते हैं, तो अत्यन्त प्रिय बुद्धिका विषय यह आत्मा है और अनन्यपर होकर इसको ही लोग ग्रहण किया करते हैं, अतएव यह आत्मा आनन्दस्वरूप है। उस आनन्दस्वरूपकी अभिव्यक्ति हो जानेका नाम मोक्ष है। ऐसा भास्करीय वेदान्तने अपना सिद्धान्त रखा।

आत्माकी आनन्दस्वरूपतापर प्रकाश—इस सिद्धान्तके सम्बन्धमें थोड़ी एक समालोचनात्मक दृष्टि दें तो यह बात ठीक है। आत्मा आनन्दस्वरूप ही तो है उसके आनन्दका चरम विकास हो जानेका नाम मोक्ष है, लेकिन आत्माका आनन्दस्वरूप मानना और फिर उस आनन्दस्वभावको नित्य अपरिणामी मानना बस इस मान्यतासे यह बात कुछ अर्थक्रियाहीन हो जाती है। वैसे इसमें गल्ती क्या है ? आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, किन्तु जितने भी पदार्थ होते हैं वे सब पदार्थ नित्यानित्यात्मक हुआ करते हैं। सर्वथा नित्य भी कोई सत् नहीं होता, सर्वथा अनित्य भी कोई सत्य नहीं हुआ करता। तो नित्यानित्यात्मकमें यो ज्ञानकी अर्थक्रिया, आनंद की अर्थक्रिया, अनुभवन ये सब बन सकते हैं पर सर्वथा नित्यमें न ज्ञानकी अर्थक्रिया बन सकती है न आनन्दकी अर्थक्रिया बन सकती। अनुभवन किसका नाम है ? पूर्व परिस्थितिका त्याग करते हुए नवीन स्थितिमें रहनेका ही नाम तो अनुभवन है। यह बात न सर्वथा नित्यमें बनती है न सर्वथा अनित्यमें बनती है।

आत्मसुखको अनित्य माननेपर अनिष्ट प्रसङ्ग—इस समय चाहे स्याद्वादकी ओरसे समाधान समझो अथवा वैशेषिक शङ्काकारके प्रति नवीन शङ्का रखनेके कारण क्वचित् स्थलोंमें वैशेषिकको ही समाधानकर्ता मानो, उक्त शङ्काके समाधानमें पूछा जा रहा है कि आत्माका सुख जो मोक्षमें प्रकट होता है वह नित्य है अथवा अनित्य ? अनित्य तो कह नहीं सकते, क्योंकि आत्माका वह आनन्दस्वरूप अनित्य हो गया तो सुख है आत्माका स्वरूप। सुखका है आत्मामें तादात्म्य तो सुख जब अनित्य है तो इसका अर्थ है कि आत्मा भी अनित्य हो गया, तो सुख भी मिट जाने वाली चीज हुई, और ऐसा शङ्काकार मानता भी नहीं है। वह तो अपरिणामी कूटस्थ नित्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समझता है। जो लोग ब्रह्मका स्वरूप केवल सत्त्व मानते हैं वे भी अपरिणामी मानते हैं और जो लोग ब्रह्मका स्वरूप आनन्द मानते हैं वे भी अपरिणामी मानते हैं। तो सर्वथा अपरिणामी अर्थात् नित्य माना जानेमें कोई कार्य नहीं हो सकता है।

नित्य सुखके संवेदनको नित्य माननेपर आपत्ति—यदि कहो कि आत्मा का वह आनन्दस्वरूप नित्य है तो उस आनन्दका अनुभवन होता है तभी तो आनन्दका उपभोग है। अनुभवन बिना आत्माका क्या उपयोग, और क्या सत्त्व ? और, यदि आनन्द है तो उसका सम्वेदन भी जरूर माना जाना चाहिए। तो यह बतलावो कि उस नित्य सुखका सम्वेदन जो होता है ज्ञान होता है, अनुभवन होता है वह ज्ञान भी नित्य है अथवा अनित्य है। आत्माका सुख तो नित्य मान लिया, मगर उस सुखका जो अनुभवन है, ज्ञान है वह अनुभव नित्य है अथवा अनित्य ? यदि कहो कि नित्य सुखका अनुभव भी नित्य है तो देखो ! आत्माका सुख भी नित्य हो गया और उस सुखका अनुभव करना भी नित्य हो गया। तो मुक्त और संसारी जीवमें फर्क क्या रहा ? आत्माका स्वरूप ही आनन्द माना और उस नित्य आनन्दका अनुभव भी सदा माना तो यही बात तो मुक्त जीवोंमें मानी जाती है। परमात्मा नित्य सुखी है और नित्य ही सुखका अनुभव करने वाला है। उनके सुखमें और सुखानुभवमें कोई भी एक समयका अन्तर नहीं आता। तो जो बात मुक्त जीवोंमें हो गयी वही बात अब इन संसारी जीवोंमें हुई, क्योंकि आत्मा सुख स्वभावी है और संसारी जीवोंमें हुई क्योंकि आत्मा सुख स्वभावी है और उसका सम्वेदन भी, अनुभव भी सदा रहता है सो एक तो यह आपत्ति आयी कि मुक्त जीवमें और संसारी जीवमें कुछ अन्तर नहीं रहा। अब अन्य भी आपत्तियां सुनिए !

नित्यसुखका नित्य संवेदन माननेपर अन्य आपत्तियां—आत्माके स्वरूप में नित्य सुख व नित्य संवेदन माननेपर दूसरी आपत्ति यह है कि संसारी जीवोंके फिर सुखका स्मरण भी नही बन सकता है, किन्तु स्मरण देखा जाता है। १०–५ वर्ष पहिले जो सुख भोगे थे या जब कभी भूतकालमें जो सुख भोगे जाते थे उनका स्मरण यहाँ देखा जा रहा है लेकिन जब सुख भी नित्य है और सुखका अनुभवन भी नित्य है, सदा है, तब तो वह प्रत्यक्ष ही प्रत्यक्ष रहा। अनुभव तो सदाकाल रहा। स्मरण कब होता है जब अनुभव कर चुके हों और अब अनुभव नहीं है तभी तो स्मरण है। किसी भी सुखका स्मरण लोगोंको होता कब है, जब कि वह सुख भोगनेमें तो नही है किन्तु भोग चुके थे। लेकिन अब इस सिद्धान्तमें सुख भी सदाकाल भोगा जा रहा है, जैसे सुख नित्य है इसी प्रकार सुखका अनुभवन करना भी नित्य हो गया। तब फिर स्मरण भी नही बन सकता और संस्कार भी नही बन सकता। संस्कार कहते किसे हैं ? अनुभव हो फिर हटकर दूसरा अनुभव हो फिर हटकर तीसरा अनुभव हो, ऐसा अनुभव चल जाए और कदाचित् अनुभवमें कुछ कमी आ जाय, ऐसी बात आ जाय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो भी उसकी धारणा बनी रहे. धारणा ज्ञान रहा करे उस हीका नाम तो संस्कार है किन्तु जब सुख भी नित्य मान लिया, सुखका अनुभव भी नित्य मान लिया तो अब धारणाको अवसर कहां ? सदा प्रत्यक्ष है, सदा अनुभव है तो संस्कार भी नहीं बन सकता। चौथी आपत्ति यह है कि आत्माका स्वरूप सुख माना और वह सुख है नित्य अपरिणामी और उस सुखका अनुभव भी नित्य माना। अपरिणामी माना, सदा वही रहता है तब फिर संसार अवस्थामें इन्द्रियजन्य सुख भी हो रहा है और वह सुख भी सदा चल रहा है तो ये दो सुख एक साथ पाये जाने चाहिएं। तब तो यह संसारी जीव भगवानसे भी बड़ा हो गया। जो बात मुक्त जीवमें थी कि सुख सदा रहे, सुखका अनुभव सदा रहे वह तो यहां है ही, क्योंकि आत्माका स्वरूप है, पर मुक्त जीवोंमें इन्द्रियजन्य सुख नहीं है। इसे इन्द्रियजन्य सुख और मिल गया तब तो यह मुक्त आत्मासे भी बहुत अधिक सुखी हो गया। इससे ऐसा मानना कि आत्मा आनन्दरूप है। कैसा आनन्दरूप ? नित्य अपरिणामी। उस आनन्दरूपकी अभिव्यक्ति ही मोक्ष है, यह बात मानना एकान्तसे युक्त नहीं है। वैसे बात सही है आत्मा आनंद स्वरूप है। न हो आनन्दरूप आत्मा तो आनन्दहीन मुक्तिके लिए कौन प्रयत्न करना चाहेगा ?

वस्तुपरिज्ञानमें त्रिभंगात्मक विशद निर्णय— पदार्थ जितने होते हैं वे सब अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे तन्मय हुआ करते हैं। स्वरूपसे सत् पररूपसे असत्, यह पदार्थोंका स्वरूप है। देखिए ! स्याद्वाद, जिसमें ७ भंग बताए गए हैं। यह स्याद्वाद यह सप्तभंग कुछ भी कहा जाय, उसमें अनिवार्यरूपसे आ ही जाता है। इसके बिना किसीका गुजारा नहीं। कितना एक मौलिक ज्ञानोपायका उपदेश जैन शासनने बताया है, जिस स्याद्वादके बिना कोई भी पुरुष न चल सकता है, न बैठ सकता है, न खा पी सकता है न बोल सकता है। कोई कुछ भी शब्द बोले तो उस बोलनेके साथ ही उसमें सप्तभंग आ जाते हैं। अभी चाहे ७ को छोड़कर ३ समझ लीजिए, तुरन्त स्पष्ट समझमें आ जावेंगे। जैसे कहा कि यह घड़ी है तो इस घड़ीके साथ इसमें यह ज्ञान लगा हुआ है कि नहीं कि यह घड़ी है, चौकी, दरी, कपड़ा आदिक अन्य कुछ नहीं है। चाहे हम इस तरह न बोलें पर प्रत्येक पदार्थके बोलनेके साथ ही हमें वह स्पष्ट समझमें छाया है, ऐसा बोलनेकी जरूरत नहीं है। यहां जरूरत कुछ नहीं है, लेकिन निर्णयमें तो यह पड़ा हुआ है। जैसे कहा कि यह खम्भा है तो इसमें यह निर्णय पड़ा हुआ है कि यह यह ही है खम्भा ही है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। तो इसमें दो बातें अनिवार्यरूपसे आ गयीं —एक, यह है, दूसरी—यह अन्य नहीं है। ये दो बातें तो आ गयीं, किंतु इन दो बातोंको हम एक साथ किसी एक शब्दसे, एक ढङ्गमें बोलना चाहें, बताना चाहें तो हमारे पास कोई उपाय नहीं है इसलिए यह अवक्तव्य है। ये तीन स्वतन्त्र बातें जो कुछ भी बोला जाय उसमें आ जाती हैं। इन्हीं का ही प्रयोग तो हर जगह है। जीव नित्य है यह कहना है तो जीव नित्य है, जीव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनित्य है तो फिर है क्या ? तुम एक शब्दमें बतलावो। द्रव्य दृष्टिसे नित्य है, पर्याय दृष्टिसे अनित्य है। दो बातें तो समझ ली मगर तुम एक शब्दमें सही बात तो बतला दो, तो वह अवक्तव्य है।

दृष्टान्तपूर्वक त्रिभंगात्मक वस्तु परिज्ञानका कथन— भैया ! स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्य तीन धर्म कुछ भी शब्द बोलनेपर उत्पन्न हो ही जाते हैं। कोई प्रयोग करे चाहे न प्रयोग करे मगर यह त्रितयात्मकता इसके प्रत्येक निर्णयमें पड़ी हुई है। अब इसके आगे और बढ़े तो चूंकि वे तीन भंग हुए तो उनका जब मिश्रण करके जानना होगा तब चार भंग उसके और निकलेंगे, क्योंकि जहां तीन वस्तुएं होती हैं उनका अगर सम्बन्ध किया जाय तो चार प्रकारसे सम्बन्ध होगा। जैसे कुछ भी चीज रख लीजिए—नमक, धना और मिर्च। इनको ही दृष्टांतमें ले लो। इनका कोई सम्मिश्रण स्वाद लेना चाहे तो चार तरहसे हो सकता है। नमक धना मिलाकर खावे, नमक मिर्च मिलाकर खावे, धना मिर्च मिलाकर खावे, यों दो दोके संयोग तीन प्रकारसे हो सकते हैं, और उन तीनोंको मिलाकर भी स्वाद लिया जा सकता है। वह एक सर्व संयोग हुआ। तीन स्वतंत्र धर्म, तीन इनके संयोगी धर्म और एक सर्वसंयोगी धर्म। इस तरहसे ७ बातें आती हैं। तीन चीजें हों तो उनका परिज्ञान अनुभवन स्वाद जो कुछ भी प्रयोग करें ७ प्रकारसे होता है।

आनन्दस्वरूपकी नित्यानित्यात्मकता—जहां यह कहा कि आत्मा आनंदस्वरूप है उस आनन्दस्वरूपका जब विवरण करने चलेंगे तब हमें कहना होगा कि वह आनन्द द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, चूंकि स्वभाव है आनन्द। जैसे आत्माका ज्ञान स्वभाव है वैसे ही आनन्द भी स्वभाव है, नित्य है, और उस आनन्द स्वभावका परिणमन भी चलता है ना, अनुभवन चलता है तो यह परिणमन षड्गुणहानिवृद्धि बिना नहीं हो सकता। उसमें सहज अनित्यता है और किन्हीं किन्हीं परिणतियोंमें तो स्पष्ट अनित्यत्व और परिवर्तन समझमें आता है। अतएव नित्यनित्यात्मक विषयको मानने पर तो यह बात युक्त बन जाती है कि आत्माका स्वभाव आनन्द है, पर नित्य एकांत में नहीं बनता। आनन्दस्वरूपकी बात तो युक्त हो जायगी, किंतु यह किसी भी प्रकार संगत नहीं हो सकता कि ज्ञानादिक गुणोंका उच्छेद हो जाना विनाश हो जाना इसका नाम मोक्ष है, यह किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, जहां ज्ञान और आनन्दका परम विकास है उस हीका नाम मोक्ष है।

मेरे आनन्दकी मेरेसे ही अभिव्यक्ति होनेका निर्णय—इस प्रकरणमें हम आपको अपने लिए भी कुछ सोचना चाहिए कि हम तो स्वयं ही ज्ञानस्वरूप हैं, मेरा आनन्द घरसे, परिजनोंसे, मित्रोंसे अन्य समस्त लौकिकजनोंसे अथवा किन्हीं भी विषयोंसे नहीं प्रकट होता। यह मैं ज्ञानस्वरूप हूं। जानन करता रहता हूं। यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानन इस अवस्थामें रागमिश्रित है, कुछ कल्पनाओं वाला है, ऐसा भी यह जानन, ऐसा भी यह परिणमन मेरा मेरेमें ही प्रकट होनेसे परवस्तु उपयोगमें आ रहे हैं और कर्मविपाक निमित्त सन्निधानमें है जिनके बिना इन वर्तमान इन्द्रियसुखोंकी अभिव्यक्ति नही हो सकती। इतनेपर भी आखिर यह परिणति मेरी ही तो है, वह मेरेसे ही प्रकट होती है, अन्य वस्तुसे प्रकट नही होती और जब विशुद्ध जाननकी परिणति होगी, होनी ही चाहिए उसकी रुचि रखना चाहिए तो वह तो कर्मविपाक बिना और पराश्रय बिना होता है, वह तो स्पष्ट ही है। अपने आपका परमकल्याण केवल जाननमात्र रहनेमें है। यही मोक्षका स्वरूप है, इसलिए इस हीके सम्बन्धसे अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करनेमें लगें तो इस प्रसादसे हमारी अभिव्यक्ति हो होकर कभी हम ज्ञानमात्र स्पष्ट रह जायेंगे। इस हीका नाम मोक्ष है और इस ही अवस्थामें आत्मा का कल्याण है।

मोक्षके स्वरूपपर प्रासङ्गिक विवादका वर्णन—मोक्षके अनेक प्रकारके स्वरूप यहां रखे जा रहे हैं। यों समझिए कि इस ग्रन्थमें प्रासंगिक विद्वानोंकी सभा लगी है, उनमें हर एक कोई अपने अपने मोक्षके सम्बन्धमें जुदे-जुदे मन्तव्य रख रहे हैं। उन सबमें मूल शङ्काकार तो विशेषवादी है जो आत्माको गुणोंसे रहित मानता है। गुणोंका अभाव होनेसे मोक्ष माननेका जिसका सिद्धान्त है उस सिद्धान्तके प्रतिपादनके बाद दूसरे और लोग भी अपने अभिमत प्रकट करने खड़े होते हैं और उनका निराकरण यह मूल शङ्काकार कर रहा है। इस सम्बन्धमें मोक्षके जितने स्वरूप बताए जायेंगे उन सभी शङ्काकारोंके स्वरूप किसी दृष्टिसे यथार्थ हैं, पर ज्ञानादिक गुणोंका उच्छेद हो जानेका नाम मोक्ष है यह किसी प्रकार ठीक न बैठेगा। हां यदि लौकिकज्ञानोंको ही गुण मान लिया जाय, जो इन्द्रियजन्य ज्ञान होता है, और फिर उस ज्ञानके उच्छेदका नाम मोक्ष माना जाय तब यह बात युक्त हो सकती है। यहां भास्करीय वेदान्तियोंने सिद्धांत रखा था कि ब्रह्मका स्वरूप आनन्द है और उस आनंद की अभिव्यक्ति होनेका नाम मोक्ष है। इसपर प्रतिप्रश्न किया गया था कि वह सुख नित्य है अथवा अनित्य ? जो सुख ब्रह्मका स्वरूप है वह सुख यदि नित्य है तो उसमें चार आपत्तियां दी गई थीं कि सुख नित्य हो गया तो फिर मुक्तिमें और संसारीमें कोई फर्क नही रहा। क्योंकि आत्माका स्वरूप तो सुख है और वह सुख नित्य है। तो संसारी जीवोंमें भी सुख रहा मुक्तमें भी रहा। नित्य होनेसे उसका स्मरण भी नही बन सकता। स्मरण तो व्यतीतका होता है। संस्कार भी नहीं बन सकता, क्योंकि एकदम वही चल रहा है तो संस्कार धारणाकी क्या आवश्यकता ? और, एक साथ फिर संसारी जीवोंमें इन्द्रियजन्य सुख और नित्यसुख ये दोनों हो बैठेंगे।

नित्य सुखस्वरूप होनेपर भी मुक्त और संसारी जीवोंमें अन्तर बताने का प्रयास—उक्त विवादपर भास्करीय वेदान्ती कहते हैं कि संसार अवस्थामें बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह है कि चूंकि जीवोंके शरीर और इन्द्रिय लगे हैं ना, और पुण्य–पापके फलमें सुख दुख आदिक होते रहते हैं ना, तो इन सुख दुःख आदिकके द्वारा और शरीर इन्द्रियके द्वारा नित्य सुखके सम्वेदनका रुकाव हो जाता है, इस कारणसे संसारी जीवोंको नित्य सुखका अनुभव नही होता। जहाँ शरीर इन्द्रिय लगी हैं वहां नित्य सुखका अनुभव नही होता। जहाँ शरीर इन्द्रिय लगी हैं वहां नित्य सुख रुक गया है। जहां ये सुख दुःख हो रहे हैं इन्द्रियजन्य उनका यह भी सुख निरुद्ध हो गया है। तब तो संसारी जीवोंको नित्य सुखका अनुभव नहा होता और मुक्त जीवोंको होता रहता है, क्योंकि उनके शरीर नही, इन्द्रियां नही, वैषयिक सुख दुःख नही, फिर फर्क हो गया मुक्त जीवोंमें और संसारी जीवोंमें। और इस ही कारण यह भी आपत्ति नहीं रही कि संसारी जीवोंमें दोनों सुख एक साथ पाये जाने चाहियें क्योंकि जब इन्द्रियजन्य सुख हो रहा है तो उस सुखके द्वारा नित्य सुखका निरोध हो गया। इन्द्रियजन्य सुख नही रहे, शरीर इन्द्रिय नहीं रहे, तो वह नित्य सुख फिर मानते हैं। तो दोनों सुख एक साथ आ पड़ें यह भी आपत्ति नही रही।

शरीरादिके द्वारा नित्यसुखका प्रतिबन्ध होनेकी अशक्यताका विशेष-वादविवेचन—उक्त मन्तव्यका वैशेषिक उत्तर दे रहे हैं कि यह कहना यों युक्त नही कि शरीर आदिक तो सुखके लिए हुआ करते हैं। शरीर तो सुखका साधन है। शरीरका प्रयोजन क्या है? 'सुख' सुखके लिए शरीर मिला है तो जो चीज सुखके लिए मिली है वही चीज नित्य सुखका बाधक हो जाय यह कैसे सम्भव है? क्योंकि जो पदार्थ जिसके लिए हुआ करता है वह पदार्थ उस हीका प्रतिबन्धक नही होता। चूंकि शरीर सुखके लिए है तो शरीर सुखका विरोधी नही हो सकता। शरीरके कारण नित्य सुख रुक गया यह बात न बनना चाहिए। और, फिर वैषयिक सुख आदिककी अनुभूतिसे नित्यसुखका प्रतिबन्ध होता है, निरोध होता है, यह कहना भी युक्त नही है क्योंकि यह बतलाओ कि इन्द्रियसे उत्पन्न होने वाले सुखके द्वारा जो आत्माके नित्य सुखका निरोध हुआ, प्रतिबंध हुआ उस प्रतिबंधका अर्थ क्या है? क्या नित्य सुखकी अनुत्पत्ति हो गई, नित्य सुख उत्पन्न नहीं हो सक रहा यह अर्थ है या नित्य सुखका विनाश हो गया यह अर्थ है प्रतिबन्धकका? अर्थात् इंद्रियजन्य वैषयिक सुखने नित्य सुखकी उत्पत्ति बन्द कर दी या नित्य सुखका विनाश कर दिया, दोनों ही बातें सम्भव नही हैं, क्योंकि नित्य सुख तो नित्य माना गया। जो नित्य है उसकी अनुत्पत्ति कैसे रहे और विनाश भी कैसे हो? इस प्रकार वैषयिक सुख दुःख आदिकके द्वारा उस नित्य सुखका प्रतिबन्ध नही माना जा सकता। तब तो यह बिल्कुल सही रहा कि नित्य सुखस्वरूप होनेके कारण सब जीवोंमें नित्य सुख है तो मुक्तमें और संसारीमें अन्तर नही रहा और संसारी जीवोंमें फिर दो सुख एक साथ पाये गये।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नयवादसे सुखस्वभाव और उसके विकासका ससारीमें प्रतिबंधका कथन इस प्रकार वेदान्ती और वैशेषिकके प्रश्नोत्तरके पश्चात् स्याद्वादवादी कहते हैं कि वेदान्तियोंने यह माना कि आत्मा सुख स्वरूप है और उस सुखस्वरूपका प्रतिबंध वैषयिक सुख और शरीर इन्द्रियके द्वारा हो गया है यह नयवादसे उचित बैठता है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, लेकिन वह आनन्दस्वरूप द्रव्यदृष्टिसे नित्य है स्वभावदृष्टिसे नित्य है। उसे सर्वथा अपरिणामी नित्य माननेपर तो ये सब विवाद उत्पन्न हो जाते हैं, पर स्वभावदृष्टिसे नित्य माना जानेपर वहां इस कारण दोष न आयगा कि आनन्दका स्वभाव है जीवोंमें, पर उस स्वभावके परिणमनमें, उस स्वभावकी व्यञ्जना दो प्रकार की हुआ करती है। संसार अवस्थामें विकार रूप और मुक्त अवस्थामें अविकार रूप। तो जो उस आनन्द गुणके विकार हैं वे ही पुण्य पापके फलरूप सुख और दुःख हैं। तो उन सुख दुःखकी परिणतियोंके कारण आनन्दस्वरूपकी व्यञ्जना नहीं हो सकी इस कारसे नित्य सुख नित्य आनन्द स्वभाव होनेपर भी मुक्त जीवोंमें और संसारी जीवोंमें अन्तर आ जाता है। पर वे सर्वथा ही नित्य हैं, अपरिणामी नित्य हैं। हैं प्रकट तो प्रकट ही हैं ऐसा माननेपर भी दोष है। स्याद्वाद दृष्टिसे देखलो कि ससारी जीवोंमें मोक्षसम्बन्धी आनन्दको अनुभूति नहीं हो सकती। अर्थात् इन ससारी जीवोंमें भी आनन्द शक्ति तो है ही, सब आत्मा आनन्दस्वरूप है। आनन्दस्वरूप होनेपर भी चूंकि व्यक्त रूपमें वह आनन्दस्वरूप इस समय विकृत है अतएव आनन्दस्वरूपके अविकार परिणमनका अनुभव संसारी जीवोंमें नहीं है। हां विकार परिणमन सांसारिक सुख दुःख का परिणमन इन जीवोंमें है, अतः नित्यसुखका और वैषयिक सुखका एक साथ उपभोग नहीं हो सकता।

विशेषवादीका सुखार्थ शरीर सम्बन्धी लौकिक उत्तर—वैशेषिकका उत्तर लौकिक दृष्टिसे सही बैठता है। संसारके जीव शरीरको सुखके लिए मानते हैं। तो जो चीज सुखके लिए है वह नित्य सुखका प्रतिबन्ध कैसे करे, किन्तु वस्तुत्व दृष्टिसे देखा जाय तो शरीर सुखके प्रयोजनके लिए होता ही नहीं है, शरीर न दुःखके लिए है न सुखके लिए है, पर कारणकार्य विधानमें आश्रय और आश्रितकार्यके विधानमें निमित्त नैमित्तिकके प्रसङ्गमें शरीरको सुखका साधक या बाधक माना जा सकता है, पर यहां तो अविकारी सुखकी बात कह रहे हैं। इस शरीरकी दृष्टि रखकर जीव अविकारी सुखको प्राप्त नही कर सकता है। शरीरके प्रतिबंधमें रहकर यह जीव जब तक शरीरका व्यामोह रख रहा है तब तक वह दुःखका ही कारण है। शरीर स्वयं अपनी ओरसे आत्माको न सुखका कारण बनता है न दुःखका कारण बनता है। यह तो व्यामोहवश उसे दुःखका साधन बनाये जा रहा है और जब भी मोहवश शरीर को सुखका साधन बनाते हैं तो वह सुख वास्तविक सुख नहीं है किन्तु अनित्य पराधीन असार कल्पनामात्रका सुख है। वैषयिक सुखके द्वारा फिर उस स्वभावका प्रतिबन्ध हो ही रहा है। वह आनन्द स्वभाव परिणमनके रूपमें अविकार रूपसे प्रकट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो और उसे वैषयिक सुख बाँध दे यह बात जरूर युक्त नहीं है और यह भी युक्त नही है कि एक साथ दो सुखोंकी उपलब्धि हो जाय। अविकार आनन्दका अनुभव भी किया जा रहा हो और वैषयिक सुखका भी अनुभव किया जा रहा हो ये दो बातें एक साथ सम्भव नहीं है, लेकिन उस आनन्द स्वभावमें जो अविकार आनन्दरूपसे प्रकट होनेकी योग्यता है उस व्यञ्जक आनन्दका तो वैषयिक सुखने घात ही किया है अतएव इस आत्माका स्वभाव आनन्द मानना और उस आनन्द स्वभावका, आनन्द गुणका विकृत और अविकृत परिणमन मानना और जब तक विकृत परिणमन है, संसार है और जब अविकारी अनन्त विशुद्ध परिणमन होता है तब मोक्ष है ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नही है। और ऐसे आनन्दस्वभावका जो वैषयिक सुखके द्वारा प्रतिबन्ध हुआ है उस प्रतिबन्धका अर्थ यह है कि आनन्द स्वभावका अविकारी परिणमन नही हो सक रहा है। अविकारी परिणमन और सविकारी परिणमन परस्पर विरोधी हैं। तो विकार परिणमनके कालमें अविकारी आनन्द परिणमन नहीं होता, इसीके मायने हैं प्रतिबन्ध।

विषय व्यासंगसे नित्यसुखके प्रतिबन्धकी सिद्धिका प्रयास – आनन्दस्वरूप आत्माके नित्यानित्यस्वरूपको न मानकर भास्करीय सिद्धान्ती पुनः कह रहा है कि नहीं, संसार अवस्थामें बाह्यविषयोंका व्यासंग बना हुआ है अर्थात् विषयोंकी प्रवृत्ति बन हुई है, उस विषयकी प्रवृत्तिके कारण वह नित्य सुख विद्यमान भी है तो भी उसके अनुभवका ज्ञान नहीं हो सक रहा, उस नित्य सुखका सम्वेदन नहीं हो रहा है, और जब बाह्य विषयोंकी प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है तब मोक्ष अवस्थामें उस नित्य सुखका सम्वेदन हुआ करता है। यहाँ आत्माके सुख स्वभावको नित्य अपरिणामी एक स्वरूप जिस ढङ्गसे है उसी ढङ्गका निरन्तर रहने वाला मानकर यह सिद्ध किया जा रहा है कि वह नित्य सुख सदा ही विद्यमान है। उसमें योग्यता और व्यक्तिका कोई प्रश्न नही है। पर नित्य सुख विद्यमान होकर भी मुक्त जीवोंके वह सुख इस कारण प्रकट है, उस नित्य सुखका इस कारण सम्वेदन हो रहा है कि अब उनके शरीर नहीं है, इन्द्रिय नहीं है तो वे बाह्य विषयोंमें क्या लगें ? कैसे प्रवृत्ति हो ? तो बाह्य विषयोंमें प्रवृत्ति न होनेसे मुक्त जीवोंमें तो उस नित्य सुखका संवेदन हो रहा है, किंतु संसारी जीवोंमें बाह्य विषयोंका व्यासंग होनेसे, सम्पर्क होनेसे, लगाव होनेसे उसको विद्यमान भी नित्य सुखका सम्वेदन नहीं होता।

विशेषवादी द्वारा विषयव्यासंगसे नित्यसुखका प्रतिबन्ध न होनेका कथन – विषय व्यासंगसे नित्य सुखके घातकी बातका वैशेषिक उत्तर देते हैं कि भाई नित्यसुख तो सदा है और नित्यसुखका अनुभव भी सदा है क्योंकि वह सुख क्या जो सुख अनुभवमें न आए ? सुख नाम तो तभी पड़ता है जब उसका परिज्ञान चल रहा हो, अनुभव चल रहा हो, भोगना हो रहा हो, अन्यथा सुखका अर्थ क्या ? अर्थात्

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐसे नित्य सुखका सम्वेदन भी जब नित्य है तो व्यासंग बन ही नहीं सकता, अर्थात् ये इन्द्रियां बाधा डाल दें, विषयोंमें लग बैठें और नित्य सुखका प्रतिबन्ध कर दें ऐसा प्रतिरोध बन नहीं सकता क्योंकि व्यासंग नाम है किसका व्यासंग क्या कहलाता है ? जैसे रूप विषयमें ज्ञानकी उत्पत्ति चल रही है, तो उस कालमें रस आदिकका ज्ञान नहीं हो रहा है इस हीका नाम व्यासंग है। जब रूप जान रहे तब रसका अनुभव नहीं, अब रसका अनुभव हो रहा तब रूपका ज्ञान नहीं। भले ही मोटे रूपमें ऐसा लगे कि जब कभी कोई बड़ी चीज जैसे मान लो तेलकी पकी हुई पपड़ियाँ पूरी ही मुंहमें देकर खा रहे हैं तो उस समय रूपका ज्ञान भी हो रहा है कि ये पीली पीली हैं. रसका भी ज्ञान हो रहा है और तेलकी गंधका भी ज्ञान हो रहा है, उसके चर्र-२ होनेकी आवाज भी सुनाई दे रही है, और वह जितनी कड़ी है उसका कड़ापन भी ज्ञात हो रहा है, लेकिन वे सब ज्ञान एक साथमें नहीं हो रहे हैं। उपयोग अति वेगवान चक्रकी तरह ऐसा चलता है कि इन सब इन्द्रिय ज्ञानोंमें फिरता रहता है कि पता नहीं पड़ता कि इसमें कुछ समयका भेद हो गया है। जैसे ५० पान रखे हुए एकके ऊपर एक और उनको एक सुईसे बड़ी तेजीसे मारकर छेद दिया जाय तो वे पान एक साथ छिद जाते हैं, ऐसा मालूम पड़ता है ना, लेकिन वे एक साथ नहीं छिदते हैं। वह सूईकी नोक जब एक पानपर छेदने पहुंचती है उस समय दूसरे पान पर वह नहीं है। यों ही पचासों पान छिदते हैं बारी बारीसे किंतु उनका पता नहीं पड़ता है। ऐसे ही भले हीं रूप, रस आदिकके ज्ञानके बदलेमें हमें पता न पड़े लेकिन वे सब क्रमसे होते हैं। तो व्यासंगका अर्थ यह है कि जिस समय हम रूपका ज्ञान कर रहे हैं उस समय रसके ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो रही, यही व्यासंग है, पर ऐसा व्यासंग यहाँ नहीं बता सकता कि आत्म में नित्य सुख तो है पर जब वैषयिक सुखका ज्ञान हो रहा है उस समय नित्य सुखका अनुभव नहीं आ सकता क्योंकि नित्य तो नित्य ही कहलाता है, उसे कौन व्यासंग करे, कौन उसका निरोध करे ? ऐसी ही बात इंद्रिय की है। जब इन्द्रिय एक विषयमें ज्ञानजनक होकर प्रवृत्ति कर रही है अर्थात् जैसे चक्षु इंद्रिय जिस समय रूपके ज्ञानके जनकरूपसे प्रवृत्ति नहीं कर रही, यही तो व्यासंग हुआ इंद्रयका। यह भी नहीं बन सकता क्योंकि सुख भी आत्मामें सदा है तो उसकी तरह ज्ञान भी आत्मामें सदा है। ऐसा सुख बताओ कि सुख तो हो रहा पर न हर्ष है न अनुभव है, न ज्ञानमें है, न उसका कोई फल हो रहा, ऐसा सुख क्या होता होगा ? सुख तो वही है जिसका प्रयोग हो रहा हो, उपयोग हो रहा हो, अनुभव होता हो। तो आत्मामें नित्यसुख भी रहे और अनुभव न हो ऐसा कहां सम्भव है ?

नित्यसुखके विरोधक शरीरका घात करनेमें उपकारकताका विशेषवादी द्वारा उपालम्भ— अभी वैशेषिक ही कहे जा रहे हैं वेदान्तीके प्रति कि आनंद स्वरूप आत्माको नहीं मान सकते। आत्मा तो आनन्दज्ञान आदि सब गुणोंसे रहित है। यहाँ कह रहे हैं कि तुम्हारा यह कहना कि आत्मामें नित्यसुख तो सदा है पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शरीरके कारण नित्यसुखका प्रतिबन्ध हो गया है वह प्रकट नहीं हो पा रहा तो फिर ऐसा शरीर मार डालना चाहिए। ऐसा शरीर तो शत्रु है जो आनन्दको नष्ट करे आनन्दको नष्ट करने वाले शरीरको यदि कोई घात कर दे तब तो उसे हिंसाका फल नहीं लगना चाहिए, किन्तु एक पुण्य होना चाहिए कि देखो इसने नित्यसुखका घात करने वाले इस शत्रु शरीरको बरबाद कर दिया। इसे हिंसाका दोष क्यों कहा जाता है ? जो प्रतिबन्धक चीज है, हमारा बिगाड़ करने वाली है उसे यदि कोई बिगाड़ दे तो हमें उसमें राजी होना चाहिए। यह संसारी जीवोंकी बात कही जा रही है। तो आत्मामें जो नित्यसुख भरा हुआ है उस सुखका प्रतिबन्ध किया है शरीरने तो शरीर के घातमें फिर हिंसा न लगना चाहिए बल्कि शरीरका घात करने वाला पुरुष तो उपकारक ही कहा जाना चाहिए।

नयवादसे आनन्दस्वरूप व उसके विकास तथा प्रतिबन्ध होनेका प्रतिपादन—अब वेदान्ती और वैशेषिकके शङ्का समाधानके बाद स्याद्वादवादी कह रहे हैं कि वेदान्तवादियोंका कहना भी यह उचित है कि आनन्दस्वरूप है आत्माका, परन्तु यह इन्द्रियका व्यासंग लगनेसे प्रकट नहीं हो रहा, लेकिन वह आनन्दस्वरूप है, स्वभाव दृष्टिसे नित्य है, पर वह एकरूप ही है जैसा भी प्रकट हो, ऐसा अपरिणामी नहीं है। उस आनन्द स्वभावका घात हो रहा इसका अर्थ यह है कि वह आनन्दस्वरूप अविकार आनन्दके रूपमें प्रकट नहीं हो रहा है इसका कारण यह है कि इंद्रियजन्य सुखका व्यासंग लगा है लगाव लगा है। जब जब इन्द्रिय सुखका सम्वेदन चल रहा है तो उस विशुद्ध आनन्दका अनुभव कहांसे हो ? तो आनन्दस्वभाव स्वभावरूपसे है, पर्याय रूपसे, अविकार रूपसे नहीं है। पर्याय दृष्टिसे तो उस आनन्दस्वभावका इंद्रिय सुख रूपमें विकारी परिणमन है और विकार परिणमनके द्वारा अविकारी परिणमन का प्रतिबन्ध होता ही है, क्योंकि एक साथ विकार और अविकार दो परिणमन नहीं हो सकते। अब रही शरीरकी बात कि शरीरसे नित्यसुख प्रतिबन्धित होता है। तो भिन्न शरीर आनन्दके विशुद्ध परिणमनका न तो साधक है न बाधक है जीवनमुक्त अवस्थाका शरीर देख लो। अरहन्त प्रभुका सकल परमात्माका शरीर होनेपर भी क्या उनके अनन्त आनन्दमें बाधा पड़ रही है। शरीरका तो आत्मगुणोंमें कुछ भी दखल नहीं है। यह आत्मा ही शरीरमें दृष्टि रखकर उसमें कल्पना करके अपने विकल्प बनाकर कभी सांसारिक सुखका अनुभव करता है कभी दुःखका अनुभव करता है। तो शरीर कभी दुःखका कारण बन जाता है और कभी सुखका कारण बन जाता है, लेकिन वास्तविक सहज विशुद्ध आनन्दका न तो शरीर कारण ही बनता है और न किसी सुख दुःख आदिकका ही कारण बनता है।

शरीरघातमें हिंसा न होनेके उपालम्भके सम्बन्धमें निर्णय—अब रही यह बात कि जो यह कहा गया है कि नित्य सुखका घात करने वाले शरीरका नाश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करनेपर उसे उपकारी माना जाना चाहिये। यह बात यों युक्त नहीं है कि यह उपालम्भ तो उस प्रश्नकी तरह है जैसे कोई पूछे कि बताओ ये प्राण आत्मासे भिन्न हैं या अभिन्न ? कोई कहे कि प्राण आत्मासे जुदी चीज है तो फिर प्राणोंको मिटा देने पर उसमें हिंसा न लगनी चाहिए, क्योंकि आत्मा जुदा है प्राण जुदा है। प्राणोंको मिटा दिया, घात कर दिया तो आत्माका क्या बिगड़ा ? और, कहोगे कि प्राण आत्मासे अभिन्न हैं तो चाहे कुछ भी चेष्टा कर डालें, मार डालें, आत्मा तो अमर है, प्राण अमर हैं, वे कभी नष्ट हो ही नहीं सकते। आत्माका कभी बिगाड़ ही नहीं हो सकता, चाहे भले ही कुछ दीखे। यह उपालम्भ ठीक यों नहीं बैठता कि प्राण आत्मा से कथंचित् भिन्न हैं कथंचित् अभिन्न हैं। इस समय चूंकि यह जीव अपनी साधनामें अधूरा है, साधनासे बिल्कुल विमुख है, और मिली है इस जीवको यह पर्याय उत्तम कि यह साधना कर सकता है और यह उस मोक्षमार्गके सिलसिलेमें संसारसे छुटकारा पानेके सिलसिलेमें कुछ बढ़ा चढ़ा हुआ है। एक दृष्टिसे देखा जाय तो निगोदिया जीवोंसे पृथ्वी, काय आदिक स्थावर बढ़े चढ़े हैं, कुछ तो कठिन दुःखोंसे निकले हैं, एकेन्द्रियसे दोइन्द्रिय कुछ आगे बढ़ गया है। वह अन्य तीन चार आदिक इन्द्रियोंके विकाससे अभी छोटा है, और यह संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मनुष्य उन सब जीवोंमेंसे बढ़ा हुआ है। यह अधूरी साधना वाला मनुष्य इस जीवनमें साधना कर रहा था, उसका घात कर दिया तो इसके मायने है कि उसको साधनासे बहिर्भूत कर दिया, तो अकल्याण कर दिया। दूसरे संक्लेश परिणाम सहित मर जानेके कारण वह कोई निम्न गति पायगा। तो शरीरका घात हिंसा है ही, और उस हिंसाका फल भोगना पड़ता ही है। बात यहाँ सिद्धान्तकी यह हुई कि आत्माका स्वभाव तो आनन्द है, पर उसकी व्यक्ति संसार अवस्थामें विकारी है, और जब विषय-व्यासङ्ग हट जायगा तो इस ही आनन्दका अविकार परिणमन हो जायगा। बस आनन्दस्वरूपकी अविकार अनन्त असीम अभिव्यक्ति हो जानेका नाम ही मोक्ष है।

नित्यसुखके संवेदनके कारणोंका प्रश्न – आत्माका नित्य सुखस्वभाव माननेपर जो वैशेषिक द्वारा उपालम्भ दिया गया है कि फिर तो मुक्त जीव और संसारी जीवमें अन्तर न रहेगा। संसारी जीवोंको फिर स्मरण न हुआ करेगा, संस्कार न बनेगा। इंद्रियजन्य सुख और नित्य सुख दोनोंकी एक साथ उपलब्धि होने लगेगी, उन शङ्काओंको दूर करनेके लिए यदि उस नित्य सुखके सम्वेदनको अनित्य स्वीकार किया जाय कि भाई ! सुख तो है नित्य, मगर उसका हर समय सम्वेदन नहीं चलता, सम्वेदन मायने ज्ञानानुभव। उसका अनुभव कभी चलता कभी नहीं। वह सम्वेदन अनित्य है, तो इसपर सम्वेदनकी उत्पत्तिका कारण बताना चाहिये। जो चीज अनित्य होती है वह किसी कारणसे उत्पन्न होती है तभी तो अनित्य है। जो किसी कारण बिना है वह अनित्य कैसे कहला सके ? जितने भी कार्य होते हैं घटपटादिक, सबके कारण होते हैं तब उनकी उत्पत्ति है। जैसे घड़ा बना तो घड़ेरूप कार्यका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समवायि कारण तो मिट्टी है। जो कारणकार्य रूप बने उसे समवायि कारण कहते हैं, कोई लोग उपादान कारण भी कहते हैं। और, साथ जो पानीका सम्बन्ध है वह है असमवायि कारण। फिर जो कुम्हार, दण्ड, चक्र आदिक अनेक कारण पड़े हैं, जो उस घड़ेसे भिन्न ही रहेंगे वे हैं सहकारी कारण। तो समवायिकारण, असमवायि कारण, सहकारी कारण, इन तीन कारणोंका सन्निधान होनेपर कार्य बनता है। यदि आत्माके नित्य सुखका परिज्ञान अनित्य माना जाय तो अनित्य चीज कारणसे ही उत्पन्न होती है तो उस नित्य सुखके ज्ञानोत्पत्ति होनेका कारण क्या है ? नित्यसुख का ज्ञान संसारी जीवोंमें तो माना नहीं, मुक्त जीवोंमें माना है। सो उन्हींसे पूछा जा रहा है कि मुक्त जीवोंको जो नित्य सुखका सम्वेदन हो रहा है उसका कारण क्या है?

नित्यसुखके संवेदनकी उत्पत्तिके कारणोंका कथन—अब यहां वेदान्ती उक्त प्रश्नका उत्तर दे रहे हैं कि मुक्त जीवोंको जो सुखका अनुभव हो रहा है उसमें समवायि कारण तो उनका आत्मा है और असमवायि कारण आत्मा और मनका संयोग है। सहकारी तपश्चरण आदिक और कर्मोंका क्षय आदिक ये सहकारी कारण हैं। इस प्रसङ्गमें प्रसिद्ध उपादान निमित्त कारणसे एक अतिरिक्त असमवायि कारण उसे समझिये जिसमें कार्य उत्पन्न होता है वह तो है समवायि कारण, जिसे उपादान कारण कहते हैं और जितने निमित्तकारण हैं जो उस उपादानमें न थे न रहेंगे, जो कार्यसे पहिले भी उपादानमें न थे न रहेंगे। कार्य होनेके बाद भी उपादानमें न रहेंगे वे सब निमित्त कारण कहलाते हैं। ये दो बातें तो स्पष्ट हैं, सभी लोग मानते हैं, पर एक तीसरी चीज है असमवायि कारण। असमवायि कारणमें एक ऐसी दूसरी चीजका सम्बन्ध बताया गया है जो उस उपादानके साथ जुटाये रहे अथवा ऐसा भाव कि जो कहनेको तो पररूपसा है मगर है एक भावात्मक, वह असमवायि कारण होता है। जैसे कपड़ा बुना गया तो कपड़ेका समवायि कारण तो सूत है और असमवायि कारण उन अनेक तन्तुवोंका संयोग है और निमित्तकारण जुलाहा आदिक हैं। तो यहाँ वेदान्ती उत्तर दे रहे हैं कि योगज धर्मकी अपेक्षा रखकर जो आत्मा और मन का संयोग है वह असमवायि कारण मौजूद है अतएव निरन्तर मुक्त जीवोंके नित्य सुखका अनुभव होता रहता है।

नित्यसुखके अनित्यसंवेदनके कारणोंका निराकरण इसके उत्तरके सम्बन्धमें वैशेषिक कहते हैं कि अब मुक्त अवस्थामें योगज धर्म कहा जाता है योगसे उत्पन्न हुआ धर्म। योग मायने समाधि, तपश्चरण, साधना। जो साधुजन आंतरिक कार्य करते हैं उसका नाम है योग और उस योगसे जो एक प्रभाव उत्पन्न होता है उसकी अपेक्षा रखकर आत्मा और मनका संयोग होता है मुक्त अवस्थामें, उसे कहते हैं असमवायिय कारण, लेकिन वहाँ योगज धर्मका सम्बन्ध नहीं। वे तो मुक्त हो गए। अब कहां समाधि, कहाँ तपश्चरण ? इससे तो वे परे हो गए। फिर संयोग योगज

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्मकी अपेक्षा क्या रखेगा ? इसलिए यह असमवाये कारण नहीं बन सकता है और न नित्य सुखकी उत्पत्ति हो सकती है। यहां चर्चा यह चल रही है कि नित्यसुख अगर जीवमें है तो फिर संसारियोंको क्यों अनुभव नहीं होता। मुक्त जीवोंको ही क्यों उस अनन्त सुखका अनुभव होता है ? उसके उत्तरमें यह कहा जा रहा है कि सुख तो नित्य है, उसमें दो राय नहीं हैं, पर सुखका सम्वेदन अनित्य है जब उस सुखका अनुभव हो तो सुखानुभव हो। जब सुखका ज्ञान नहीं कर रहे तो नहीं है सुख। तो अनित्य सम्वेदन माननेपर प्रश्न यह किया गया कि उत्पन्न कैसे हुआ ? योगज धर्मकी अपेक्षा रखकर आत्मा और मनका सम्बन्ध तो बन नहीं सकता।

मुक्तिमें नित्यसुखके अनित्य संवेदनके उत्पत्ति कारणोंके सिद्ध करनेका प्रयास—अब भास्करीय वेदान्ती कह रहे हैं कि ऐसा है कि मुक्त अवस्थामें तो योगज धर्म सम्भव नहीं है, अर्थात् तपश्चरण निर्विकल्प समाधि ये तो सम्भव अब मुक्तमें नहीं रहे, लेकिन पहिले जो नित्य सुख सम्वेदन हुआ, वह योगज धर्मकी अपेक्षा रखकर मन के संयोगसे उत्पन्न हुआ और फिर उसके बाद जो उत्तरोत्तर सुखका सम्वेदन है वह योगज धर्मकी अपेक्षा रखकर मनके संयोगसे उत्पन्न हुआ और फिर उसके बाद जो उत्तरोत्तर सुखका सम्वेदन है वह योगज धर्मकी अपेक्षा रखे ही बिना केवल आत्मा और मनके संयोगसे होता रहता है। इसे थोड़ा कुछ एक स्याद्वादके दृष्टांतसे समझ लो। जैसे कहा गया है कि केवलज्ञान एकत्व वितर्क अवीचार शुक्ल ध्यानके प्रतापसे होता है या कर्मोंके क्षयसे होता है। ज्ञानावरणका क्षय होनेसे केवलज्ञान होता है, यह तो निमित्त दृष्टिसे कथन है और भीतरमें देखनेसे यह कहा जायगा कि एकत्व वितर्क अवीचार नामक शुक्ल ध्यानके बलसे उन्हें केवलज्ञान होता है तो कोई यों पूछ बैठे कि अब भगवानसिद्धके एकत्ववितर्क अवीचार कहां रखा है फिर वहां केवलज्ञान कैसे हो रहा है। अथवा अब कर्मोंका क्षय कहां हो रहा है, केवलज्ञान कैसे हो। तो जैसे उस सम्बन्धमें उत्तर हो सकता है कि प्रथम समयका जो केवलज्ञान है वह द्वितीय शुक्ल ध्यानके प्रतापसे हुआ, ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे हुआ लेकिन अब जितने केवल ज्ञान चल रहे हैं, अनन्तकाल तक केवलज्ञानकी वर्तना चलती रहती है, प्रतिसमय नवीन-नवीन ज्ञानोपयोग शुद्ध जो चलता रहेगा अब वह अपने ही पूर्ण सामर्थ्यसे चलता रहेगा। वहां कुछ योगज धर्मकी द्वितीय शुक्ल ध्यानकी आवश्यकता नहीं रहती है, इसी तरहसे हम (भास्करीय) कह रहे हैं कि प्रथम जो नित्यसुखका सम्वेदन है वह तो योगज धर्मकी अपेक्षा रखकर आत्मा और मनके संयोगसे हुआ लेकिन बादका जो सुख सम्वेदन है वह पूर्व विज्ञानकी अपेक्षा रखकर जो पूर्व ज्ञानका सम्वेदन हो रहा है वह उत्तरोत्तर अगले अगले सुख सम्वेदनको उत्पन्न करता है।

शरीरसम्बन्ध विना आत्मामें मनके संयोगकी असिद्धि—वैशेषिक कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है, क्योंकि जब शरीरका सम्बंध नहीं रहा तब फिर मनका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संयोग कैसे होगा ? शरीरके सम्बन्धके बिना मनका संयोग तो शरीरके सम्बन्धके बिना मनके संयोगमें ज्ञानकी उत्पत्तिकी सहकारिता नहीं हो सकती । देखो भैया ! ऐसा भी यहां मन्तव्य किया जा रहा है कि मुक्त अवस्थामें भी मनका सम्बन्ध बना है तब सुखका सम्वेदन हो रहा है और शरीर नहीं रहा । कुछ सिद्धान्तवादी मनको अलग द्रव्य मानते हैं आत्माको अलग द्रव्य मानते हैं और शरीरको भौतिक पदार्थ मानते हैं, ये तीन स्वतंत्र स्वतंत्र चीजें हैं, अगर किसीका शरीर न रहा तो अब मनका और आत्माका सम्बंध तो बन ही रहा, लेकिन यहाँ एक प्रतिशंकामें कहा जा रहा है कि शरीरके सम्बन्धके बिना अगर मन और आत्माका संयोग भी रहा आये तो वह विज्ञानको उत्पन्न नहीं कर सकता । जैसे कि यहां हम आप लोगोंके शरीरका सम्बन्ध है तभी मन और आत्माके संयोगसे ज्ञान उत्पन्न हो रहा है । देखी हुई बातसे उल्टी बात कल्पनामें नहीं आ सकती है अन्यथा बहुतसे दोष हो जायेंगे । और देखिये—आकस्मिककार्य कभी होता नहीं तो नित्य सुखका सम्वेदन यदि कार्य है तो उसका कारण बताना चाहिये । कारण कुछ बन नहीं रहा इसलिए यह कहना भी अयुक्त है कि आत्मामें नित्य सुख तो है किन्तु उसका संवेदन अनित्य है, इस कारण संसारी जीवोंमें सदा नित्यसुख सम्भव नहीं है ।

आनन्दस्वरूप और उसके विकासका प्रतिपादन - अब वेदान्ती और वैशेषिकोंके प्रश्नोत्तरके बाद इस सम्बन्धमें स्याद्वादके सिद्धान्तसे भी विचार सुनो । आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है । तो वस्तुतः जैसे आकाशद्रव्यको अपना परिणमन करने के लिए किसीकी अपेक्षाकी जरूरत नहीं रहती, एक कालद्रव्य मात्र कारण रहता है इसी प्रकार आत्माको भी अपना ज्ञानानन्दरूप परिणमन करनेके लिए किसी अन्यकी अपेक्षा न रहना चाहिए । केवल एक (ज्ञान) द्रव्य निमित्त मात्र रहता और आत्मा अपने विशुद्ध परिपूर्ण ज्ञान और आनन्दसे परिणत रहा करता लेकिन अनादिसे यह आत्मा विभावबद्ध है, कर्मबद्ध है, शरीरबद्ध है, ऐसी स्थितिमें इस आत्माने अपनी योग्यतासे अपनी शक्तिसे अपने आप अपने ज्ञानानन्दका घात किया है । और, इस हालतमें इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा करके ही ज्ञानका और आनन्दका विकास हो रहा है । हम जितना आनन्द पाते हैं आजकल, यह किसी इन्द्रियके विषयके साधनसे सेवनसे या मनकी कल्पनामें, यश कीर्ति आदिककी बात सोचनेसे हम सुखका अनुभव करते हैं तो यहां इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा हो गई । उसका निमित्त पाकर ये सुखके विकास हो रहे हैं इसी प्रकार यह ज्ञान भी है । हम जितने ये ज्ञान कर पाते हैं तो किसी इंद्रियसे ज्ञान करते हैं, मनसे ज्ञान करते हैं तो यहां इंद्रिय मन सापेक्ष यह ज्ञानोत्पत्ति है । ऐसे ही इंद्रियमन सापेक्ष सुखोत्पत्ति है । लेकिन उस स्वभावको न भूलें, उस सहजकला को न भूलें कि जैसे आकाशद्रव्य अपना परिणमन करनेमें किसी भी परद्रव्यकी अपेक्षा नहीं रखता, इसी प्रकार यह आत्मा भी अपने ज्ञान और आनन्दके परिपूर्ण विकास परिणमन करनेमें किसीकी अपेक्षा नहीं रखता । तथापि संसार अवस्थामें तो वह परिस्थिति नहीं सम्भव है इसी कारण यहां उस अनन्त आनन्दका अनुभव नहीं हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा और अनन्त ज्ञानका अनुभव नहीं हो रहा। जहाँ यह व्यासंग मिट जाता है कि ये इन्द्रिय मनकी उपेक्षा करना ये समस्त विरुद्धतायें समाप्त हो जाती हैं। तब यह आत्मा अपने आपके उस निरपेक्ष ज्ञानानन्द स्वभावका आश्रय करके उसकी उपासना करके ज्ञानानन्दमात्र मैं हूँ, ऐसा विकल्प न करके केवल ज्ञानानन्दरूप अनुभवन करता है सो उस ध्यानकी विशुद्धि बढ़नेपर ये कर्म क्षयको प्राप्त होते हैं। ये आशा, तृष्णा, आधीनतायें, कल्पनायें, प्रतीक्षायें ये सब समाप्त होती हैं उस समय इसको जो ज्ञान उत्पन्न होता है या ज्ञान विकसित रहता है, आनन्द विकसित होता है वह निरपेक्ष है, ऐसा है मुक्त जीवका ज्ञान और आनन्द। इस मुक्त अवस्था होनेपर भी वहां सदृश परिणमन तो चल रहा है पर यह नहीं है कि वहां भी वह ज्ञान और आनन्दगुण कूटस्थ नित्य हो गया हो। कूटस्थ नित्यका कुछ सत्व ही नहीं है। मुक्त अवस्थामें अवक्तव्य निर्विकल्प अपरिवर्तनीय जिसमें विसदृशताका कुछ अंश भी जाहिर नहीं हो सकता ऐसा परिणमन चल रहा है, इस प्रकार आत्मा आनन्दस्वरूप है और उस आनन्दकी परम अभिव्यक्ति होनेका नाम मोक्ष है, ऐसा जो कथन है वह युक्त है पर उस आनन्दस्वरूपको भी कूटस्थ अपरिणामी मान लेनेपर कुछ बात नहीं बन पाती है। वहाँ मुक्त अवस्थामें उस सुखकी उत्पत्ति होनेका असमवायि कारण बताना यह अब वहां युक्त नहीं है। आत्माको कैवल्य प्राप्त होता है, कैवल्यका अर्थ है जहाँ केवल आत्मा ही आत्मा रहे, वहां मनका सम्बन्ध नहीं रहता, तो नित्य आनन्द स्वभाव है आत्माका, पर उस स्वभावका संसार अवस्थामें विकृत परिणमन हो रहा है, अविकार परिणमन तो वस्तुके स्वरूपकी निजी बात है। उसके ही सत्त्वके कारण उसके अविकार परिणमन होते ही रहना चाहिए।

आत्मस्वरूपके वर्णनका अर्थसंसिद्धिसे सम्बन्ध -- इस ग्रन्थमें जो यह प्रसङ्ग चल रहा है इस प्रसङ्गको बतानेका मुख्य ध्येय इस ग्रंथराजका नहीं है लेकिन सम्बन्धित है। इस ग्रन्थमें यह संकल्प किया गया कि चूंकि अर्थकी सिद्धि वस्तु स्वरूप का ज्ञान आत्माके प्रयोजनकी सिद्धि प्रमाणसे हो सकती है। प्रमाण मायने सम्यग्ज्ञान यथार्थ ज्ञान हो तो आत्माके प्रयोजनकी सिद्धि होगी वस्तुके स्वरूपका सही निर्णय होगा। प्रयोजन क्या है? जब वस्तुका सही निर्णय हो गया कि प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र तब परमें स्वामित्वबुद्धि नहीं रहती। देखिये पदार्थ है क्या कितना? एक पदार्थ उतने का नाम है कि एक परिणमन जितने पूरेमें रहे और जिसके बाहर न रहे। जैसे आत्मा के जो ज्ञान परिणमन चल रहे सो कहीं ऐसा नहीं है कि एक दिमाग और मस्तिष्ककी जगह ज्ञान परिणमन चल रहा और शेष जो आत्म प्रदेश हैं असंख्याते, वहाँ ज्ञान परिणमन नहीं है। ऐसे ही जब कुछ सुखका अनुभव होता है तो ऐसा नहीं होता कि [illegible] का अनुभव यहाँ दिलमें इस ही जगह चल रहा है और बाकी जो आत्मप्रदे[illegible] सुख परिणमन नहीं चल रहा है। जब जो कुछ भी ज्ञान होता है स[illegible] है। जब जो भी सुख होता है समूचे आत्मामें होता है। आत्मा वहां [illegible]

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नही है, वह तो एक है। व्यवहारसे बड़े चौड़े की दृष्टि करनी पड़ती है वहां तो इस ज्ञानपुञ्ज आत्माको देखो तो समूचा ही जितना कि विस्तार बताया है, सारेमें एक अखण्डता है। कपड़ेकी तरह लम्बा चौड़ा नही है आत्मा, किंतु एक आकाशकी भांति लम्बा चौड़ा है। फर्क इतना है कि आकाश असीम है। इसका अर्थ यह है कि कपड़ा लम्बा चौड़ा है उसका तो अंश करके अलग बताया जा सकता है फाड़ करके एक एक तन्तु न्यारा करके बताया जा सकता है कि लो यह है इतना बड़ा कपड़ा और उसके कई टुकड़े किए जा सकते हैं, पर जैसे आकाशके टुकड़े नही किए जा सकते, अलग अलग करके नही बताए जा सकते इसी प्रकार यह आत्मा है, इसके अंश नही किए जा सकते हैं। असंख्यात प्रदेश क्या है ? वह तो एक अखण्ड है, उसमें स्थान नही हैं, असंख्यात अंश नही हैं, लेकिन जैसे एक आकाश अखण्ड होकर भी हम उसको एक एक प्रदेशकी मापसे अनन्त प्रदेशी मानते हैं इसी प्रकार अखण्ड आत्मामें एक एक प्रदेशकी मापसे हम उसमें असंख्यात प्रदेश मानते हैं लेकिन वस्तुत: वह अखण्ड है।

निमित्त कारणके लगावमें ज्ञान और सुखके स्थानकी दृष्टि आप यहां पूछ सकते हैं कि अनुभव तो ऐसा ही होता है कि जब कोई चीज भूल जाते हैं, उसका हम स्मरण करने बैठते हैं तो दिमागपर जोर लगाते हैं और जब उसका ख्याल होता है तो ऐसा लगता है कि इस दिमागसे ख्याल आया और इस दिमागसे जाना, इतनी जगहमें जाना। इसी प्रकार जब किसी अच्छे प्रसङ्गमें या वैषयिक प्रसंग में सुखका अनुभव होता है या किसी आपत्तिमें दु:खका अनुभव होता है। यह अनुभव करते हैं यहाँ छातीके सीधपर भीतर जो दिल है उस दिलमें सुख हुआ है, उस दिलको दु:ख हुआ है और तब सुख होनेपर दिलको राजी करके दिलको स्वतन्त्र और एक खुला हुआ सा अनुभव करते हैं, और जब दु:ख होता है तो दिलको दबाते हैं। दु:ख होता है तो दु:खका अनुभव दिल हीमें तो होता। इसका उत्तर है कि वस्तुत: अनुभव तो होता है समूचे आत्मामें, पर इस बन्धनबद्ध अवस्थामें चूंकि उस ज्ञानकी उत्पत्तिके कारण ये इन्द्रियां हैं और इंद्रियज जमघट ये सिरभागमें हैं और इसी ही जगह पौद्गालिक कुछ रचना विशिष्ट है जिससे मनका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। तो उत्पत्ति कारण की अपेक्षासे यह परिज्ञान होता है कि हमारे दिमागने जाना यहां ज्ञान हुआ। ज्ञान हुआ सर्वत्र मगर उत्पत्ति कारणकी प्रधानतासे लोग ऐसा निश्चय करते हैं क्योंकि ज्ञानको उत्पन्न करनेके लिए कारण जुटाना चाहिए ना, तो कारणपर दृष्टि पहुँची है और कारणपर लक्ष्य और दृष्टि पहुंचनेके कारण फिर जीवोंका ऐसा संस्कार बन जाता, उपयोग वहां लग बैठता, क्योंकि कारणपर उपयोग लगनेकी बात तो प्रकृत है तो ऐसा अनुभव हुआ करता है वस्तुत: ज्ञानका अनुभव सर्वत्र आत्मामें है। इसी प्रकार सुख दु:खकी बात है।

उदाहरणपूर्वक अखण्ड आत्मामें सर्वत्र संवेदनकी सिद्धि—जब कभी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हाथमें फुंसी हो गई बड़ी हो गई, तो उस समय यह मनुष्य दुःखका अनुभव करता है तो वह दुःख उस हाथकी उतनी जगहमें नही हुआ किंतु दुःख हुआ करता है समूचे आत्मामें। लेकिन समूचे आत्मामें मुझे दुःख है ऐसा यह दुःखी पुरुष ख्याल क्यों नही बनाता ? उसका ख्याल यों नही बन सकता कि प्रथम तो उसे आत्माका ही बोध नही है, वह अपने चैतन्यस्वरूपकी बात क्या सोचे ? दूसरी बात यह है कि जो दुःख हुआ है उस दुःखकी उत्पत्तिका निमित्त कारण तो वह हाथकी फुंसी है जिसके कारण यह दुःख चल उठा, जिसके निमित्तको पाकर ऐसा दुःख उत्पन्न हुआ है तो लोगोंकी दृष्टि उस दुःखके कारणपर विशेष रहती है। जैसे किसी आदमीको वजहसे दुःख हुआ। मान लीजिए कोई विरोधी है और उसके बर्तावसे दुःख हुआ तो इस दुःखीकी दृष्टि उस विरोधीपर बनी रहती है और वह यह अनुभव नहीं करता है कि यह दुःख तो कल्पना भावके कारण मेरेमें हुआ है, तो विरोधीसे मुझे दुःख नही हुआ है, एकदम विरोधी ही उसकी दृष्टिमें रहनेके कारण यही ख्याल बना रहता है कि इस विरोधीने मुझे कितनी विपत्ति पहुँचाई। तो यह बतलावो कि जहाँ बिल्कुल पृथक क्षेत्रमें वह विरोधी रहता है, वह अपने गांवका भी चाहे न हो, किसी अन्य गाँवमें चाहे वह रहता हो, उसके द्वारा आपको दुःख पहुँचे यह कहां सम्भव हो सकता है, पर उसीपर ध्यान रहता है कि इसके द्वारा मुझे दुःख हुआ, यह मेरा विरोधी है। इसी प्रकारसे समझ लो इस शरीरमें यह जीव रह रहा है और फोड़ा फुन्सी आदिक रूप ऐसा परिणमन हुआ है जहां एक क्षेत्रावगाह आत्मा है और निमित्त नैमित्तिक केवल संबंध है तब इस फोड़ा फुंसीपर ही उसका ध्यान बना रहता है। और ऐसा ख्याल करता कि मुझे दुःख यहांसे हुआ है, ऐसी एक कुटेब संसारी जीवोंकी रहती है, पर वस्तुतः जो भी इस जीवको सुख दुःखका अनुभवन होता है वह इस आत्मामें सर्वत्र होता है।

प्रमाणस्वरूपनिरूपणके प्रकरणमें प्रासङ्गिक चर्चायें—आत्मा तो ज्ञानानन्दस्वभावसे परिपूर्ण है उसमें किसी भी प्रकारकी आपत्तियाँ नही हैं। इस प्रकार अपनी समृद्धिका परिचय इन जीवोंको नही है सो ये बाह्य प्रसङ्गोंको ही निरखकर बेचैन रहा करते हैं। वस्तुतः तो इस आत्मामें अपने ज्ञान और आनन्दके विशुद्ध परिपूर्ण अनुभवन करनेके लिए किसी भी अन्यकी अपेक्षा नही है। अब भी जब कभी अपने इस विशुद्ध स्वरूपपर ख्याल बनाकर अपने आपको निरखा जाता है तो वहां दुःखकी कुछ भी बात नही है। ऐसी हितकी प्राप्तिकी बात सम्यग्ज्ञानसे मिलती है। इसलिए सम्यग्ज्ञानके वर्णनकी यहाँ प्रतिज्ञा की है, ज्ञानका स्वरूप यहाँ बताया जा रहा है। ज्ञान दो प्रकारका है—एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष ! प्रत्यक्ष ज्ञान निरावरण होता है। निरावरणकी बात सुनकर ईश्वरवादियोंने कहा कि ज्ञान निरावरण होकर प्रत्यक्ष हो सो नही, किन्तु अनादिमुक्त ईश्वरका ज्ञान अनादिनिरावरण स्वयम् प्रत्यक्ष है, इसकी सिद्धिके लिये कर्तापन बताया तो प्रकृतिवादीने कहा कि नही, ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष नही, प्रकृतिपर आवरण है। प्रकृति सर्वज्ञ होती है। इसपर कुछ बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चलनेपर जब प्रत्यक्ष ज्ञानके सही स्वरूपपर सहमत होते हैं उस गोष्ठीके विद्वान् लोग, तो उसमें एक कह उठा कि यह ठीक है, निरावरण ज्ञान है और योगी सर्वज्ञ हो जाता है, पर सर्वज्ञ होनेके बाद वह भोजन किया करता है, उनसे निपटनेके बाद फिर अंतमें मोक्षके कारणपर विवाद चल गया कि मोक्षका स्वरूप अनन्त चतुष्टय नहीं है, किन्तु गुणोच्छेद है। इसपर भास्करीय वेदान्ती मोक्षका स्वरूप यह रख रहे हैं कि आनन्द है ब्रह्मका स्वरूप और आनन्दकी जो अभिव्यक्ति है उसका नाम है मोक्ष। इस प्रकार उस प्रमाणके स्वरूपका कथन चलते रहनेके बीच यह प्रसङ्ग चल गया है जिसमें मोक्ष के स्वरूपका इस समय विवाद उठ खड़ा हुआ है।

मोक्षके स्वरूपका परिज्ञान और मोक्षकी प्रतीक्षा—आत्माका सर्वोच्च हित मोक्षमें ही है। जन्म-मरण राग-द्वेष इसके आवरक हैं इन सबका वियोग होने पर जो आत्मामें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्दका विकास होता है बस उस स्थितिमें हम आपकी भलाई है, उससे पहिलेकी जितनी ये संसारकी स्थितियाँ हैं इन स्थितियोंमें भलाईका नाम नहीं है। मोक्षमें विकल्प कर करके अनेक ख्याल ही ख्याल बनाये जा रहे हैं पर उनसे इस आत्माको कुछ भी मिलनेका नहीं है, हैरानी ही भोग रहे हैं। तो हित तो मोक्ष अवस्थामें है। तो हमें मोक्षके स्वरूपका निर्णय करना चाहिए और मोक्षका स्वरूप जानकर उसकी बाट जोहना चाहिए। जैसे जिस पुरुषसे अनुराग होता है तो उसकी बाट जोहते हैं ना, कब आयगा ? कब मिलेगा ? ऐसे ही मोक्षसे यदि हित समझा है तो उसकी भी बाट जोहना चाहिये ! हमने उस मोक्षको पानेका कितना उपाय बना लिया है अभी कितने उपायोंकी कमी है, यह बात ध्यानमें हो तो मोक्षकी बाट जोहना सम्भव है। विकल्प मोह जालमें ही लगे हैं और कल्पनासे मान लिया कि हमने धर्म कर लिया स्वाध्याय, पूजा पाठ, धर्म-चर्चादि सब कर लिए तो उससे बड़े आप धार्मिक बन गए, ऐसी बात नहीं है। लोगों में कुछ अपनी पोजीशन बनाये रखनेके लिए, दूसरोंपर ऐहसान लादनेके लिए यदि धार्मिक क्रियाकाण्ड किए जा रहे हैं तो उससे इस आत्माका कुछ भी भला नहीं होने का। अपने आत्माका भला तो तब होगा जबकि अपने आपके स्वरूपमें ही अन्तःप्रवेश करते हुए, वहाँकी ही समस्त गुणसमृद्धियोंको देखता हुआ तृप्त रहे। उस ही स्थितिमें समझिये कि हम मोक्षके उपायमें चल रहे हैं नहीं तो जैसे अनन्त भव व्यर्थमें बिता दिए वैसे ही एक यह भी भव व्यर्थमें व्यतीत हो जायगा, लाभ कुछ न हो सकेगा।

अनन्तचतुष्टयलाभस्वरूप मोक्षके विरुद्ध दो दार्शनिकोंके मन्तव्य—भैया ! हित है मोक्षमें, अतः मोक्षके स्वरूपका निर्णय करना चाहिए। यों तो थोड़े समयमें मोक्षका स्वरूप जो चाहे कह दे, किन्तु दार्शनिक क्षेत्रमें जब बड़ी युक्तियां की जाती हैं तो उस समय उन सबके मर्मोंको जानकर जो स्वरूपका निर्णय होता है वह एक विशिष्ट निर्णय होता है। सिद्धान्तमें तो मोक्षका स्वरूप यह है कि अनन्त ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दर्शन शक्ति आनन्द आदिक अनन्त चतुष्टयोंका लाभ होना। पर इसके विरुद्ध अनेक दार्शनिक अपने अपने मंतव्य रखते हैं। पहिले तो वैशेषिकोंने यह कहा जिनको कि कुछ भी स्वरूपमें फर्क मालूम पड़े, कहनेसे, संज्ञासे भी, तो भी भेद करनेकी रुचि होती है, ऐसे वैशेषिक लोगोंने मोक्षका स्वरूप यह बताया था कि आत्मामेंसे ज्ञानादिक गुण सब खतम हो जायें तो उसका नाम मोक्ष है। जब तक आत्मामें गुणोंका सम्बन्ध है तब तक यह जीव संसारी है। प्रसिद्धि भी ऐसी कर रखी है कि निर्गुण परमात्मा होता है उसी सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा गया है। इतनेमें भास्करीय वेदांती अपना दर्शन रखने लगे कि नहीं, गुणोच्छेदका नाम मुक्ति नहीं है किंतु आत्माका नित्यसुख स्वभाव है, आनन्दरूप है, ब्रह्मका आनन्दस्वरूप है, उस आनन्दस्वरूपका प्रकाश हो जाना, उसकी अभिव्यक्ति हो जाना इसका नाम मोक्ष है। अब सुननेमें तो अच्छा लग रहा है, कोई खिलाफ बात तो नहीं कही जा रही है, ठीक ही वह भास्करीय वेदान्ती कह रहा है। लेकिन मंतव्यमें यदि यह पड़ा हुआ हो कि आत्माका वह आनन्दस्वरूप नित्य है, अपरिणामी है, उसकी कुछ अवस्था नहीं, कोई रूप ढङ्ग नहीं, वह तो एक आनन्द आनन्दस्वरूप है, सो ऐसे इस वेदान्तीके प्रति इस समय वैशेषिक हां कह रहे हैं।

नित्यसुखके सम्बन्धमें वैशेषिकोंका कथन – अनेक दोषापत्ति बतानेके बाद भी यह टेक रखी जा रही है कि मुक्त अवस्थामें तो नित्यसुख ही है। यहाँ अनित्य सुखका उल्लंघन करके नित्यसुखकी जो कल्पना की है तो जब कल्पनाओंसे ही सब मत बन जाता है तो नित्यात्वधर्मका अधिकरण शरीरादिक भी मान लिया जाय अर्थात् शरीर भी मुक्तिमें है, जो कि नित्य है जैसे कि तुम्हारा सुख नित्य है अन्यथा यह कहो कि वहां सुख भी नहीं है। यहाँ आनन्दस्वरूपवादी कह रहे हैं कि शरीर तो कार्य है, उसे नित्य कैसे मान लिया जायगा क्योंकि जो जो कार्य होते हैं वे नित्य नहीं होते हैं। शरीर तो कार्य हैं किसी दिन उत्पन्न हुआ और फिर इसका वियोग होता है। तो जो कार्य होता है वह नित्य नहीं हुआ करता है। अनेक बातें उदाहरणमें देख लो। तो शरीर चूंकि कार्य है इसलिए न तो शरीर मोक्षमें है और न शरीरकी नित्यता ही है। तो इसपर वैशेषिक कहते कि यही बात नित्यसुखके बारेमें समझ लो कि सुख वह कभी नित्य नहीं हुआ करता। जैसे शरीर नित्य नहीं होता वैसे ही सुख नित्य नहीं होता। जैसे शरीर कार्य है वैसे ही सुख भी कार्य है। नित्यसुखको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है, हमारी इन्द्रियाँ तो उस नित्य सुखको समझ नहीं रही हैं। यदि कहो कि योगियोंका प्रत्यक्ष समझता है तो उसमें विवाद पड़ा हुआ है कि नित्य सुखका ग्रहण कर रहा है या अनित्य सुखका।

द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टिसे आनन्दरूपताका निर्णय—अब वेदान्ती और वैशेषिकके प्रश्नोत्तरोंपर स्याद्वादी कहता है कि यह सब विवाद एकांतमें उठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खड़ा हुआ है। आत्माका आनन्दस्वरूप है, इसे कोई मना नहीं कर सकता, अन्यथा आत्माका प्रयोजन क्या ? आत्माका आनन्दस्वरूप है और ज्ञानस्वरूप है वह ज्ञान आकुलतासे रहित है। ज्ञानकी विशेषता ही यह है जो जाननहार रहता है, जिसके साथ किसी प्रकारकी विह्वलता नही होती है ऐसा ज्ञान तो आत्माका स्वरूप है, जो कि आनन्दका अविनाभावी है। अब उस स्वरूपका उपाधिके संसर्गमें, सम्बन्धमें तो विकार परिणमन होता है और उपाधि रहित परिणमनमें अविकार परिणमन होता है यह बात तो अनेक दृष्टांतोंसे जान सकते हैं। एक बिल्कुल स्वच्छ दर्पण है, वह स्वच्छ ही है, उसका स्वरूप स्वच्छ है, पर कोई वस्तु सामने आती है, उपाधिका सन्निधान होता है तो वह दर्पण चित्रविचित्र प्रतिबिम्बरूप हो जाता है। तो दर्पण स्वच्छ है उसका विकाररूप प्रतिबिम्बरूप परिणमन होता है, ईंट पत्थर आदिकमें क्यों नहीं दूसरी चीजोंका प्रतिबिम्ब पड़ता ? क्योंकि उसमें स्वच्छन्दता नहीं है। तो जब कोई उपाधि है तो प्रतिबिम्बरूप है और जब उपाधि नहीं, तो ज्योंका त्यों रहता है। इसी प्रकार आत्माका स्वरूप ज्ञानानन्द है। जब उपाधिका सम्पर्क है तब यह विकृत रूप चल रहा है, वैषयिक सुख दु:ख यों नाना विभावरूप परिणम रहा है और जब उपाधिका संसर्ग नहीं रहता है तो यह अपने उपयोग रूपमें अविकाररूप परिणमता रहता है।

निरुपाधि होनेका मूल उपाय—उपाधिका सम्पर्क न रहे, शरीर कर्म आदिकका सम्बन्ध न रहे इसका उपाय क्या है ? इसका उपाय है शरीर और कर्म की उपाधिका सम्बन्ध नही है यह अभीसे निरुपाधि विविक्त ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिका अभ्यास करें। मैं जानता हूँ, मैं सुनता हूँ, मैं देखता हूं इस प्रकारका भी मनमें विकल्प न उठे। यहां लोकमें जो कहा जाता है मैं मकान कर रहा हूँ, मैं दुकान कर रहा हूँ सो मोचो मैं ये कोई काम नही किया करता हूं। ये सब पुद्गलके कार्य हैं। जैसे कोई चीज हाथमें लेकर भी जिस चाहे तरहसे बनायी जाती है। जैसे मानलो एक रोटी बनानेका ही काम है, उस रोटीपर बहुत प्रयोग किए जाते हैं। अब लोई रूपमें कर लिया, फिर पसार दिया, जैसी चाहे कितनी ही अवस्थायें की जाती हैं उस रोटीमें, इतने प्रयोग होनेपर भी रोटी बनाने वाला पुरुष सिर्फ ज्ञानको कर रहा है या किसी पर द्रव्यका कोई कार्य भी कर रहा है ? वह आत्मा तो उस जगह केवल अपने विकल्प बना रहा है। आत्मा कोई रूपरसगंधात्मक पिण्ड वस्तु नहीं है, ऐसे ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माके कार्य ज्ञानानन्दरूप ही हो सकेंगे। आत्मा जब विकारी बनता है तो आकुलताओंरूप परिणमता है और जब यह आत्मा अपने स्वरूपकी सावधानी रखे तो ज्ञाता दृष्टा जाननहार रूपमें परिणमता है। और आनन्द विशुद्ध निराकुलता रूपमें परिणमता है। इस विशुद्धपरिणमनके लाभके अर्थीको अभीसे ही विविक्त अन्त:स्वरूपको निरखना चाहिए।

परिणामिनित्य आत्मामें आनन्दरूपताकी संसिद्धि—स्वरूप है आत्मा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का आनन्द, किंतु आत्मा नित्यानित्यात्मक है, सो मेरा जितना स्वरूप है उतना सब भी नित्यानित्यात्मक है। वह आनन्दस्वभावसे नित्य है परन्तु पर्यायदृष्टिसे उसमें जो भी कार्य होता है, उसका परिणमन होता है अतः यह आपत्ति देना कि मुक्त जीव में और संसारी जीवमें दोनोंमें नित्यसुख हो बैठेगा, यह आपत्ति स्याद्वादमें नहीं आती। हां अपरिणामी नित्य आत्माके किसी स्वरूपसे वह बात बन नहीं सकती। जो आत्मा को सुख स्वभावी कहा गया है वह सुख स्वभाव मात्रकी सिद्धि करता है। नित्यसुख स्वभाव है अर्थात् अपरिणामी है जिसमें कुछ परिणमन नहीं है। ऐसा कोई नित्य सुख स्वभाव हो उसकी सिद्धि नहीं होती है। अतः मानना चाहिए कि यह स्वभाव दृष्टिसे नित्य है, परिणमन दृष्टिसे अनित्य है। स्याद्वाद निर्णयका कितना सुन्दर उपाय है पर इस उपायसे निर्णय करके बादमें भी उस भेद दृष्टिका विकल्प रखे तो वह योगसाधना नहीं कर सक रहा। सब कुछ जानकर भी फिर कुछ जाननेका श्रम न करे मात्र जाननहार रहे आत्मामें परम विश्राम रहे। जान लिया सब, सारभूत बात कहीं कुछ नहीं है इसलिए मैं अन्यत्र कहीं पड़ना नहीं चाहता बस इतनी ही बात मुझे चाहिए। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं सोचना है।

स्वमें स्वकी अवस्थारूपसे स्वका भवन—देखो भैया! जानना भी क्या, जानता कौन है? जानना होता है, पदार्थमें उत्पादव्यय चलता है। पदार्थकी उत्पत्ति का कर्ता कौन है, पर तो उत्पन्न करता नहीं और खुद, खुदको उत्पन्न क्या करे, वह स्वतन्त्र सत् है। तो पदार्थ पर्यायको उत्पन्न करता कौन है? पर्याय होती है। कैसे होती है? विभाव पर्याय तो एक निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे होती है, स्वभाव पर्याय उपाधिसन्निधान बिना मात्र स्वके भवन स्वभावसे होती है। करनेकी कौनसी बात है? जो यह समझाया जाता है कि आत्मा मात्र ज्ञानको करता है तो वह तो उस भाषामें कहा गया है जो जहाँ परको करता हूँ, करता हूं इन विकल्पोंसे जहां करने करनेका ही एक दिमाग बने, उनको बताना पड़ता है कि आत्मा परको नहीं करता। किन्तु, आत्मा तो ज्ञानमात्र भावको ही कर्ता है। जिनके करने करनेकी आदत बनी है उनको करनेका नाम लेकर समझाया जाता है। वस्तु है और द्रव्यत्वस्वभावके कारण प्रति-समय अवस्थारूप होता रहता है। और वहां उपाधिका सम्बन्ध हो तो यों होता है, निरुपाधिसहित हो तो यों होता है।

समाधिभावका उपकार—अब निर्णय करनेके बाद एक समाधि भाव लेनेकी आवश्यकता होती है समाधि अर्थात् परम उपेक्षा और थोड़ा विश्राम! इन दो बातों का ही मिश्रण तो समाधि है। समाधिमें और हो क्या रहा है, प्रत्येक बात विधि निषेधात्मक है. तो समाधिका स्वरूपविधिसे प्रवृत्तिसे तो अन्तः विश्राम है और निवृत्ति से परम उपेक्षा है। तो ऐसा परिणाम हमारा आ सके और मोक्ष तत्वकी प्रतीक्षा करनेकी हमारी वृत्ति बने तो हम इस झमेलेसे दूर हो सकते हैं अन्यथा कितनी ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यवस्था करले चाहे मकान सजाले चाहे दुकान सजाले और वैभवपर वैभव भी बढ़ाते जा रहे हैं, सब कुछ कर लिया पर करना बाकी रहता है और करने-करनेमें मरण हो जाता है, आखिर यह जीव आगे कहीं तो जायगा ? कुछ इस बातपर भी तो दृष्टि ले जायें। यह सारा झमेला जो एक ४०-५० वर्षके लिए किया जा रहा है तो इतना सा समय इस अनन्तकालके सामने कुछ गिनती भी रखता है क्या ? इस छोटेसे जीवनकालमें अंतस्तत्त्वकी बात तो रुचती ही नहीं है, सब कुछ धन वैभव इज्जत पोजीशन ही रुच रहा है। एक इस शरीरको यह मैं हूँ, ऐसा भाव करके केवल अपनी ऐंठ ही रही। तत्व कुछ न निकला। और, ऐसे थोड़े समयकी ऐंठ ये प्रत्येक जीवमें चलती आयीं। चलो, इससे भी सन्तोष होता कि ५० वर्ष ऐंठ बगरा लें कुछ विकल्प करलें, बरबादी करलें. फिर ५० वर्षके बादमें मरेंगे तब तो झंझट छूट जायगा। नहीं छूटेगा मरण करके जिस नई जगहमें जायेंगे वहां फिरसे अ, आ, इ, ई शुरू करेंगे। फिर विकल्प करेंगे, मोह करके और थोड़े ही समय बाद मरण करके चले जायेंगे। यों जन्म मरणकी परम्परा ही चलती रहेगी और इस जीवको कभी हितका मार्ग नहीं मिल पायगा।

आत्मार्थकी सिद्धिके प्रयत्नका अनुरोध—भैया ! आनन्दस्वरूप भगवान आत्माको देखो, जो देहसे भिन्न स्वयं विराजमान है, सब अपने अपने अन्दर सोचें और अपने हितके ही भावसे सभी धर्मकी बातें एक इसी प्रयोजनके लिए सुनें। क्या कहा जा रहा है, हम भी इस सम्बन्धमें कुछ कहें, बोलें बतायें, या कुछ ज्ञानका अर्जन करें तो कहीं यह ज्ञान बतावेंगे तो लोग भी समझेंगे आदिक ये कोई भी प्रयोजन नहीं है धर्मकी बात सुननेका। धर्मकी बात सुननेका प्रयोजन तो यह है कि सुननेके ही साथ सुननेके ही समयमें बाह्यसे दृष्टि हटाकर जिस आत्माकी बात कही जा रही है उस आत्माको लखनेमें अपना उपयोग लगाया जाय, निरखा जाय और कैसे मेरा हित हो बस इस भावनासे अपने आपपर ही उसे घटित किया जाय यह धर्मश्रवणका प्रयोजन है। तो अपने आपमें निरखें कि इतने वर्ष तक विकल्प कर चुकनेके बाद, करते रहनेके बाद भी आज मेरे आत्मामें उन्नति कितनी हुई है, हममें कौनसा विकास हुआ है, बड़प्पन हुआ है ? विकास और बड़प्पनकी बात तो दूर जाने दो, हैरानी, परेशानी, अवनति हुई है। आत्माके सहज, विशुद्ध, निरपेक्ष स्वरूपको जानकर उसकी आराधना के बलसे अपने आपमें शुद्ध ज्ञानको अनुभव बनाए रहना, बस यही एकमात्र सारभूत सत्य पुरुषार्थ है। इसके अलावा जितने भी काम हैं वे सब कोयलेकी दलालीमें काले हाथ जैसी कहावत है, इसी प्रकार इन पर पदार्थोंकी दलालीमें ,सांसारिक प्रयोजनों की दलालीमें केवल व्यर्थ विकल्प ही हाथ लगते हैं, मिलता कुछ नहीं है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, और रत्नत्रयके उपायसे आनन्दस्वरूपसे अविकार विकासके रूपमें अभिव्यक्ति होनेका नाम मोक्ष है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्माके सुखस्वभावकी असिद्धिके लिए वैशेषिकों द्वारा वितर्क - अब यहाँ वैशेषिक वेदन्तीसे पूछ रहे हैं कि आत्माका जो सुख स्वभाव कहा है तो सुख स्वभावपनेका अर्थ क्या है ? क्या सुखत्व जातिसे सम्बन्धी रहनेका नाम सुखस्वभावपना है ? तो सुखत्व जातिका सम्बन्ध किसमें रहा ? सुखमें, तो सुखत्वका आधार कौन रहा ? सुख न कि आत्मा। आत्मद्रव्य है सुख गुण है और सुखत्व रहा सुखमें अर्थात् सुखनामा गुणमें रहा, आत्मामें न रहा। गुण और द्रव्य जाति साधारणतया नहीं पायी जाती है अर्थात् एक ही जातिका सम्बन्ध द्रव्य और गुणदोषोंमें नहीं होता। वैशेषिक यह सिद्धान्त है कि द्रव्य, गुण पर्याय, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये ६ पूरे जुदे-जुदे सत् हैं, जबकि स्याद्वद दर्शनमें कहा है —जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ स्वतन्त्र पूर्ण सत् हैं। भेदभावमें विशेषता करनेकी भेद करनेकी ही धुन है सो एक ही द्रव्यमें ये ६ भेद कर दिए हैं—यों समझिये जैसे एक जीव द्रव्य, एक जीव ले लीजिए। उस जीवमें गुण है ना, ज्ञानदर्शन आनन्द आदिक जीव इस समय भी गुणात्मक हैं, लेकिन विशेषवादमें जीव अलग सत् है गुण अलग सत् है। जीवकी परिणति होती है ना, अच्छा जाना, बुरा जाना, सुखरूप परिणमा, आनन्दरूप परिणमन किया हुई तो प्रत्येक कार्य कार्यके कालमें उस जीवमें तन्मय है और अगले समयमें वह क्रिया न रही तो और क्रिया हुई यों पूर्व क्रियाकी लीनता हो जाती है। किंतु, वैशेषिक सिद्धान्तमें क्रिया (पर्याय) भी स्वतन्त्र सत् है। अब देखो सब जीवोंमें जीवत्व सामान्य है। समझमें आता है कि जीव जीव सब एक स्वरूप हैं, तो इन जीवोंमें एक जीवत्वस्वरूप सामान्य है। तो लो विशेषवादने जीवमें रहने वाला जो यह सामान्य तत्त्व है इसको भी स्वतन्त्र सत् कह दिया। यह भी स्वतन्त्र एक अलग पदार्थ है। अच्छा, जीव कहनेपर सब जीव आए, मगर यह जीव, यह जीव इस तरहका रहने वाला जीव यह विशेष आया कि नहीं ? तो लो विशेषवादमें एक विशेष भी कोई पदार्थ स्वतन्त्र सत् है। लेकिन जीव पुद्गलकी भाँति अब ये सब जुदे जुदे पदार्थ तो हो गए, अब मुश्किल यह पड़ रही कि ये जीवमें मिल कैसे जायें ? जीवमें तन्मय गुण रहते हैं। तन्मयतासे जीवकी परिणति भी रहती है उसी ढङ्गसे जीवमें सामान्य नजर आया, जीवमें विशेष नजर आया, ये सब बातें कैसे बनें तो लो समस्या अगर कोई आती है तो समाधान तो इसकी बुद्धिमें ही पड़ा हुआ है। लो एक समवाय नामक पदार्थ है जो यहाँ दुनियामें एक सम्बन्ध नामकी चीज है। वह सम्बन्ध इन सबके सम्बन्ध जुटा देता है। अच्छा -इतनेपर भी विशेषवादियोंको अपने भेद करनेकी हठमें तृप्ति न हुई तो वे कहते हैं कि इसके अतिरिक्त अभी अभाव नामक कोई पदार्थ है। घड़ी नहीं है तो 'न' यह भी एक भी एक पदार्थ है, यों ६ प्रकारके पदार्थ माने गए विशेषवादमें। तो कोई सी भी जाति अगर द्रव्यमें है, गुणमें नहीं है। यदि जाति गुणकी है तो वह जाति गुणमें रहेगी, द्रव्यमें न रहेगी। इस प्रकार सुखत्व जातिसे सुखमें सुखत्व आ गया तो आत्मामें तो नहीं आया। तो सुख-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

त्वस्वभावी सुख रहा, आत्मा सुखस्वभाव नहीं रहा।

आत्माके सुखाधिकरणत्वके विरुद्ध वैशेषिकोंका वितर्क यदि कहो कि आत्मा सुखत्व जातिसे सम्बन्धित नहीं रहा, न सही किंतु सुखत्व रहा सुखमें और वह सुखका आधार हुआ आत्मा यों सुखका अधिकरण तो है आत्मा। तो कहते हैं कि यह भी बात नहीं बनती क्योंकि सुख आत्माका नित्य है या अनित्य? यदि कहोगे कि नित्य है तो जैसे आत्मा नित्य रहता ही है ऐसे ही सुख भी नित्य रहा, फिर वहां सम्बन्धकी क्या जरूरत? तथा नित्य सुख माननेपर मुक्त और संसारी सब एक समान हो जायेंगे। अनित्य है तो कार्य हुआ उसका कारण बताओ। तो दोनों विकल्प युक्तियोंसे आत्मा सुखस्वभावी सिद्ध नहीं होता, ऐसा वैशन्तीके प्रति वैशेषिकवादीका वक्तव्य होनेपर स्याद्वादी कहते हैं।

आत्माके सुखस्वभावका और उसकी सिद्धिके उपायका प्रतिपादन — सुखके भावका नाम सुखत्व है? और वह सुख कोई आत्मासे अलग नहीं है किन्तु पदार्थ अखण्ड स्वतन्त्र सत् होता है और उसे जब समझाना है तो भेद करके समझाना पड़ता है। उस भेदपूर्वक पद्धतिमें गुणके रूपसे प्रतिपादन हुआ करता है। पदार्थ तो जो है सो ही है अवक्तव्य है। अब उस आत्मामें ज्ञान गुण है सुख गुण है, इसका भाव पड़ा है यों भेद दृष्टिसे प्रतिपादन है। वह आत्मा तो अखण्ड है, उसे बतानेका एक यह उपाय है कि उसको गुणोंका भेद करके समझा जाय। यह सब एक दर्शनशास्त्रके ढङ्गपर मोक्षके स्वरूपकी चर्चा चल रही है, और वैसे तो कोई अगर जानना चाहे और सूक्ष्मविवेचनाके झगड़ेमें न पड़े, क्या है क्या नहीं, इसमें दिमाग न लगाना चाहे, न लगाये, कोई जरूरत नहीं है, पर इतना तो करना होगा कि समग्र परवस्तुओं पर अहित भिन्न जान करके उनमें पर वस्तुओंको पर अहित भिन्न जान करके उनमें परम उपेक्षा हो। जब परम उपेक्षा हो। जब परम उपेक्षा हो गयी तो उसमें करनेका भाव न रहा, करनेका श्रम न रहा। तो एक सहज जो मैं हूं उसका अनुभव हो जाएगा। परम उपेक्षा और अन्त: विश्राम इन दो बातोंके द्वारा, जो बात बड़े-बड़े दर्शनशास्त्री बड़ी युक्तियोंके द्वारा जानना चाहते हैं, कोई भी जीव इन दो उपायोंके द्वारा अपने आत्माको स्पष्ट जान सकता है। जैसे कोई आदमी परस्परमें मिश्री के स्वादके विषयमें लड़ रहे हों, एक कहे कि मिश्री मीठी होती है, कोई कहे कि मिश्री खट्टी होती है, कोई कुछ कहे कोई कुछ और कोई विवेकी पुरुष उस झगड़ेमें ही न पड़ना चाहे तो एक मिश्री की डली लेकर मुखमें डाल ले, वह समझ जायगा कि मिश्री मीठी होती है इसी प्रकार आत्माके स्वरूपके विषयमें चाहे बहुतसे वादविवादोंमें न पड़ें अथवा दूसरोंके वादविवाद समझमें भी न आयें किन्तु समस्त परसे परम उपेक्षा करें और अपने आपमें अन्त: विश्राम करके समस्त शास्त्रोंकी वह सारभूत चीज हम लोगोंको सुगमतासे प्राप्त हो सकती है जिसको बड़े बड़े आचार्योंने बहुत कुछ श्रम करके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्राप्त किया। इस बातको तो तिर्यञ्च भी पा लेते हैं। तो आवश्यकता है गम्भीरतामें आत्मतत्त्वकी बात सोचनेकी। इस मोहममतासे आत्माका कुछ भी भला नहीं है।

ब्रह्मकी आनन्दरूपताकी सिद्धिमें दिये गये हेतु – भास्करीय वेदान्तियोंने आत्माको सुखस्वभावी सिद्ध करनेके लिए दो हेतु दिए। यह आत्मा अथवा यह ब्रह्म सुखस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है क्योंकि यह अत्यन्त प्रिय बुद्धिका विषय है अर्थात् सबको अत्यन्त प्यारा अपना आत्मा ही है। कैसी भी स्थितियाँ हों, दूसरीकी अपेक्षा कर दी जायगी पर अपने आत्माकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। जैसे कोई बंदरी अपने बच्चेको लिए हुए किसी नदीके बीच अवस्थित छोटे टीलेपर बैठी है और नदीमें बाढ़ ऐसी आ जाय कि वह टीला भी डूबने लगे, तो वह बंदरी अब अपने आपको डूबते हुए देखती है तो अपने बच्चेके ऊपर खड़ी होकर भी अपने प्राणोंकी रक्षा करती है, गृहस्थीके अनुभवोंसे भी देख लो कोई आपत्ति कभी घरपर आती है तो पहिले तो आप अपने घर वालोंकी रक्षा करते हैं पर जब अपने प्राणोंपर सङ्कट आ जाता है तब आप उन समस्त परिजनोंकी उपेक्षा करके अपने प्राणोंकी रक्षा करते हैं। तो आखिर अपना आत्मा सभीको प्रिय है इससे यह सिद्ध है कि आत्मा आनन्दस्वरूप है तभी तो यह बात घटित होती है कि यह जीव अपने आपको सुरक्षित रखनेका यत्न करता है। दूसरी बात यह है कि अपने आपको अङ्गीकार अनन्यपर होकर किया जाता है अर्थात् हम अपने आपका बचाव, अपने आपके आनन्दका भोगना, अपने आपमें मौज मानने की बात ये सब अनन्यपर होकर होते हैं। उतना कोई जीव पर वस्तुमें लीन नहीं हो पाता जितना कि अपनेमें लीन होता है। इससे यह सिद्ध है कि ब्रह्म आनन्दस्वरूप है।

वेदान्ती द्वारा कहे गए आत्माकी अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्व हेतुके निराकरणका वैशेषिक द्वारा प्रयास ब्रह्मकी आनन्दरूपताकी सिद्धिके लिये उक्त दो हेतु वेदान्तियोंने दिए थे, उनका उत्तर यहां वैशेषिक यों दे रहे हैं कि ये दोनों हेतु सदोष हैं, अनेकान्तिक हैं, क्योंकि यह कहना कि आत्मा अत्यन्त प्रिय बुद्धिका विषय है इसलिए आत्मा आनन्दस्वरूप है यों ठीक नहीं कि अत्यन्त प्रिय बुद्धिका विषय आत्मामें दुःखका अभाव ही है न कि मात्र सुख और आत्मा। वैशेषिक सिद्धान्त वाले यहां आत्माके अभावको अथवा दुःखके अभावको प्रिय मान रहे हैं और कहते हैं कि कभी कभी तो आत्माके अभावमें भी प्रियबुद्धि देखी जाती है इससे यह हेतु तक भी सिद्ध नहीं कर सकते कि सुख ही प्रिय है। दुःखका अभाव भी प्रिय है और दुःखका अभाव एक तुच्छाभावरूप माना है। वैशेषिक सिद्धान्तने अभावको तुच्छाभाव माना है। जैसे किसीने कहा कि उस बेन्चपर थाली रखी है उसे उठा लावो। थाली उसपर थी नहीं तो उस जगह देखकर वह कहता है कि थाली यहाँ नहीं है। तो क्या तुमने वहां खूब देखा?····हाँ खूब देखा। तो क्या थालीका अभाव, थालीका असत्व भी दिखा करता है? क्या देखा?··· खाली बेन्च। तो थालीके अभावके मायने थालीके सन्निधानसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दलिल अनीनीत आधारभूत कोई चीज। तो अभाव किसीके सद्भावरूप पड़ता है। लेकिन वैशेषिक सिद्धान्तने अभावको अन्य प्रतियोगीके सद्भावरूप नहीं माना, किंतु अभाव खुद एक पदार्थ है और वह अभावरूप है, तुच्छाभावरूप है, किसी अन्यकी सत्तारूप नहीं है, अभाव खुद सत् पदार्थ है ऐसा वैशेषिक सिद्धान्तमें माना गया है। तो अत्यन्त प्रियबुद्धिका विषय आत्मा ही होता है इसलिए वह आनन्दरूप है यह युक्ति ठीक नहीं, और अत्यन्तप्रिय बुद्धि रना है। क्या सबको अपने आपका आत्मा अत्यन्त प्यारा लग रहा है ? तो जरा उनकी दशा तो देखो जो आत्महत्या कर डालते हैं। उनको अपना आत्मा बुरा लगा तभी तो हत्या की। यहां वैशेषिक अपनी युक्तिसे यह सिद्ध कर रहा है कि आत्मा आनन्दस्वरूप नहीं है। आनन्द तो एक परतत्त्व है, आत्मामें सुखका लगाव लग बैठा इसी कारण आत्मा दुःखी हो रहा है। जिस दिन आत्माका आनन्द जड़से निकल जायगा उस दिन मोक्ष होगा। यह वैशेषिक सिद्धांतसे मोक्षका स्वरूप है। तो दुःखी होनेकी अवस्थामें जीवको अपने आपका आत्मा भी प्यारा नहीं लगता। तो इससे सिद्ध है कि अत्यन्त प्रियबुद्धिका विषय है आत्मा, यह सही बात नहीं है।

वेदान्ती द्वारा कहे गए आत्माके अनन्यपरतयोपादीयमानत्व हेतुके निराकरणका वैशेषिकका प्रयास—आत्माको आनन्दस्वरूप सिद्ध करनेके लिये दूसरा जो हेतु दिया था कि आत्मा आनन्दस्वरूप है, क्योंकि अनन्य लीन होकर यह खुदको ही ग्रहण करता है। जब कभी घरमें, मित्रोंमें, गोष्ठीमें झगड़ा हो जाय तो कैसा अकेला, एकांतमें बैठकर अपने विकल्पोंसे प्यार किया जाता है। सोचते जावो मनमें यों न करना यों न करना। कितना विकल्प करके अनन्य लीन होकर यह अनन्य लीन होकर यह सोचा करता है। इससे सिद्ध है कि आत्मा आनन्दस्वरूप है यह बात भी सही नहीं है। यह कहना कि आत्मा आत्माके लिए सब कुछ करता है। जैसे लोग कहते हैं ना कि सभी लोग अपने लिए करते हैं जो कुछ भी करते हैं। तो आत्मा भी अपने लिए अपना ग्रहण करता है ऐसा कहना ठीक नहीं है, आत्मा अन्यके लिए ग्रहण नहीं किया जाता यह बात अयुक्त है, क्योंकि सुखके लिए अपने आत्माका ग्रहण हुआ करता है तो दोनों हेतु असिद्ध हैं और सदोष हैं।

आत्माकी आनन्दमयता व अपने लिए अपने परिणमनका समर्थन—उक्त प्रकारसे वेदांतियोंके सुखस्वभाव आत्माकी सिद्धिमें दिए गए हेतुमें वैशेषिक द्वारा दोष देनेके बाद अब स्याद्वादी कहते हैं—दुःखका जो अभाव है वह तुच्छाभावरूप नहीं है किंतु प्रतियोगीके सद्भावरूप है। जैसे जिस पुरुषको दुःख नहीं रहता वह यह महसूस नहीं करता कि मुझे दुःख नहीं है, किंतु वह तो सुख रूपसे अपने आपका अनुभव करता है, उसमें आह्लाद होता है। सुख आत्माका गुण है, स्वभाव है और उस गुणका वह अपनेमें परिणमन करता है। सुखके लिए अपने आपका ग्रहण करना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसका अर्थ है अपने लिए अपना ग्रहण करना है, क्योंकि वह सुख आत्मासे भिन्न वस्तु नहीं है। तो कोई यह कहता है कि यह पुरुष तो अपने आपका साथी है। जो कुछ करता है वह अपने लिए करता है। तो एक भी पुरुष ऐसा बताओ कि जो कोई परके लिए भी कुछ करता हो। तो वस्तुका स्वरूप है कि जो कोई जो कुछ करता है सो अपने लिए करता है। बड़े-बड़े उपकारी मनुष्य भी जो कुछ चेष्टा करते हैं परका उपकार करते हैं वे परके लिए नहीं करते, स्वयंमें जो क्रिया उत्पन्न हुई है शुभ कषाय कह लो, भला विकल्प कह लो उससे जो वेदना उत्पन्न हुई है उस वेदनाको शान्त करनेके लिए ही तो परोपकार किया। बहुत ही करुणावान पुरुष हो, जिसे दुनियामें अपना नाम फैलानेकी भी रंच मनमें कल्पना नहीं है ऐसा सज्जन पुरुष बड़ी करुणासे जीवोंकी सेवा करे, उपकार करे तो उस पुरुषने वस्तुतः किया क्या ? अपने आपमें जो दयाका भाव बना हुआ था जिससे कि यह रह नहीं सकता था प्रवृति किए बिना उस मंद कषायमें उत्पन्न हुई प्रेरणाका उसने अपना इलाज किया है तो अपने लिए ही उसने सब कुछ किया।

करुणामूर्ति आचार्यदेवोंकी वस्तुतः आत्मशान्त्यर्थ ग्रन्थरचनामें प्रवृत्ति

यदि कोई यह भी कहे कि इन आचार्यदेवोंने जो ये बड़े ग्रन्थ रचे हैं जिनसे हम आप सब जीवोंका भला हो रहा है इन्होंने बड़ा उपकार किया। कृतज्ञ पुरुषको ऐसा कहना ही चाहिये। कृतघ्न होनेपर तो वह धर्मका पात्र नहीं रह सकता, फिर भी वास्तविकतापर दृष्टि देकर तत्त्वनिर्णय करें तो वास्तविकता यह है कि इन आचार्य महाराजको संसारके अज्ञानी जीवोंपर बहुत बड़ी करुणा उत्पन्न हुई और वह करुणा इस लिए उत्पन्न हुई कि उन्होंने देखा कि ये सभी लोग हैं तो सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप, किसीको स्वभावसे कोई कष्ट नहीं है, सब प्रभु हैं। लेकिन इस अपने आपकी प्रभुताका परिचय न होनेसे ये दीन होकर संसारमें व्यर्थ ही जन्म मरण कर रहे हैं। भैया ! उस वक्त बड़े धनिष्टरूपसे करुणा उत्पन्न होती है कि साधन तो खुदके पास हैं और बेवकूफ बनकर उसका उपयोग न करे कोई। जैसे मान लो कोई मुसाफिर अपना बिस्तर लिए रेलमें चल रहा है। रेलमें डिब्बा पूरा खाली है, थोड़ेसे आदमी उस डिब्बेमें बैठे हैं। ठंडके दिन भी हैं, सारी रातका सफर है, अपने निर्दिष्ट स्थानपर सुबह दिनमें पहुँचना है, फिर भी यदि वह यह सोचकर कि सुबह फिर बिस्तर बांधना पड़ेगा, बिस्तर न खोले और रातभर जाड़ा सहता रहे, तो देखने वाले लोग उसे बेवकूफ कहेंगे और उसके ऊपर एक करुणाभरी दृष्टि करेंगे। अथवा यों समझो कि जैसे गरमीके तो दिन हैं और कोई प्यासा साधारण पुरुष प्रमादवश पड़ा रहे, प्यासके मारे उसका गला सूख रहा है, फिर भी पासमें रखे हुए घड़ेसे जल निकालकर पीनेमें प्रमाद करता है तो उसे कितना बेवकूफ कहा जायगा ? उसके ऊपर तो उसे देखने वाले लोगोंको करुणा विशेष होगी। तो इन आचार्योंने जब यह देखा कि यह जीव स्वयं ज्ञानानन्दमय है, प्रभु है, एक केवल दृष्टि देने भरकी बात है और दृष्टि भर देनेके लिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई विशेष यत्न नही करना है। जैसे मान लो कोई पुरुष पश्चिमको मुख किए बैठा है और पूर्व दिशाकी ओर बैठे हुए किसी व्यक्तिको देखना है तो उसे जरासा मुख घुमाने भर की बात है कि वह पुरुष उसे दिख जायगा। तो इस प्रसङ्गमें तो मुखको कुछ घुमाना भी पड़ा, मगर अपने उस सुखस्वरूपकी ओर दृष्टि करनेमें इतना भी श्रम नही करना है। केवल अपने आपमें ही अपने उस स्वरूपको निरखने अनुभवनेका प्रयत्न करना है। पर इन संसारी जीवोंसे इतना भी नही किया जाता, ऐसा देखकर उन ऋषिजनोंके करुणाबुद्धि उत्पन्न हुई और उस करुणाकी वेदना न सह सकनेसे उन्होंने ये ग्रन्थ रचे, तो क्या किया उन्होंने ? केवल अपनी शान्तिके लिए अपने आपमें अपना काम किया।

आत्माकी आनन्दरूपताकी सिद्धिमें वेदान्तियों द्वारा कहे गये हेतुओं का स्याद्वादसे समर्थन — देखो भैया ! अपने लिए ही तो सब काम किया जाता। फिर अपने आपमें तत्पर होकर अपने आपको ग्रहण करनेकी बात कौन सी अनुचित है। यह जीवोंका स्वरूप है। इसमें नयवादसे दृष्टि दें तो उनके हेतुमें दोष नही है। हाँ अगर एकान्तवादसे हठ करके कि आत्मा तो ऐसा सुखस्वभावी है कि उस सुख का कोई परिणमन नही, वर्तना नहीं, वह तो सुख स्वरूप है ऐसी एकान्तकी बात कहनेमें तो विरोध है, पर यह सही बात है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्द स्वरूप है। ज्ञान और आनन्द, ये गुण बताए गए, इसका अर्थ यह नही है कि ज्ञान और आनन्द अलग सत् है और आत्मा अलग सत् है। दोनों स्वतन्त्र सत् हैं यह अर्थ नही है किन्तु एक सद्भूत अखण्ड आत्माको समझानेके लिए जो आत्माकी विशेषतायें आत्माके स्वरूपकी बातें बतायी जाती हैं उसका नाम गुण कहलाता है। कुछ गुण अलग रखे हों आत्मामें और उन गुणोंका फिर प्रतिपादन है ऐसी बात नही है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है जब ही यह आत्मा अपने इस स्वरूपपर दृष्टि देता है, अपने आपको पहचानता है तो इसका ज्ञान भी और आनन्द भी परिपूर्ण विकसित होता है।

'आनन्दम् ब्रह्मणो रूपं' के कथनपर वैशेषिकोंका विरोध — अब वैशेषिक वेदान्तीके द्वारा दिए गए आगमके कथनका विरोध कर रहा है। उनका कहना था कि हमारे आगममें भी लिखा है आनन्दम् ब्रह्मणोरूपं। ब्रह्मका स्वरूप आनन्द है, उससे सिद्ध है कि ब्रह्म अथवा आत्मा सुखस्वभावी है। सदाकाल इसमें सुख विराजमान रहता है। अपरिणामी सुख। यह कहना अयुक्त है ऐसा वैशेषिक कह रहे हैं आत्माका प्रयोजन सुख ही हो यह बात सिद्ध नही होती। आत्माका प्रयोजन दुःख दूर करनेका भी है, दुःखका अभाव भी है। आत्मा आत्माके लिए ही उपादीयमान है यह बात सिद्ध नही होती है। आनन्दका कुछ अर्थ नही। दुःख सदाके लिए न रहे, बस यही है आनन्दका अर्थ। तो आत्यंतिक दुःखके अभावके अर्थमें आनन्द शब्दका प्रयोग है इसलिए आनन्द शब्द गौण है, और देख लीजिए, यहाँ पर भी जब दुःख

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं रहता है तो लोग उसे सुख शब्दसे बोला करते हैं। जैसे किसीको १०४ डिग्री बुखार है और उतरकर अब १०० डिग्री रह गया है तो वह कुछ होशमें आता है, कुछ थोड़ी सी उसे चैन मिलती है। यदि कोई उसके पास आकर पूछता है कि भाई अब तुम्हारी तबियत कैसी है ? तो वह कहता है कि अब तो अच्छी तबियत है। अरे कहां अच्छी तबियत है ? अभी तो ३-४ डिग्री बुखार चढ़ा है, लेकिन बात वहाँ क्या हुई कि दो डिग्री बुखार कम हुआ, उसकी कमीमें वह सुख शब्दका प्रयोग करता है। अथवा कोई सिरपर लकड़ीका गट्ठा लादे जा रहा है, बड़ा वजनदार गट्ठा है। सिर दुखने लगा तो वह उस गट्ठेको एक पेड़से टिकाकर नीचे उतारकर रख देता है और उस बोझके उतर जानेपर सुखका अनुभव करता है। अरे उसे किस बातका सुख मिला ? किसीने उसे कुछ फल खिला दिए क्या या किसीने उसके लिए सुख साधन जुटा दिए क्या ? अरे बात वहाँ यह है कि उसके सिरमें जो बोझ लदा था, जिससे उसको बड़ा दुःख प्रतीत हो रहा था वह दुःख कुछ कम हो गया। उसमें वह सुख शब्दका प्रयोग करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि दुःखके अभावको लोग आनन्द कहा करते हैं। आनन्द कोई चीज हो, आत्माका स्वरूप हो सो बात नहीं है दुःखके अभावका नाम आनन्द है।

आत्माके सद्भावात्मक आनन्दरूपका स्याद्वाद द्वारा समर्थन—उक्त प्रकार वैशेषिक द्वारा उत्तर होनेपर स्याद्वादवादी लोग कहते हैं कि दुःखके अभावमें सुख शब्दका प्रयोग करना और उसे गौण मानना यह बात युक्त नहीं है। जितने अंशमें दुःखका अभाव है उसके अनुकूल उसने सुखका भी अनुभव किया। दुःख नहीं है, तो वहाँ आनन्दका क्या अनुभव ? अनुभव होता है किसी विधिका। दुःख न रहा, यह अनुभव किया जा रहा है, इसका अर्थ है कि सुखका अनुभव किया जा रहा है। जैसे किसी पुरुषने कहा कि आज अजैनोंको खूब भोजन कराओ अब वहां कोई अजैन का यह अर्थ माने कि जैनका अभाव तो जैनके अभावको भोजन क्या कराया जायगा। वहां तो कुछ भी खर्च नहीं होनेका। ऐसा तुच्छाभाव मान लिया तब तो सारा पैसा बच गया। जैनका तुच्छ अभाव सर्वत्र है, ले अभाव ! तू खा ले तो वह कैसे खा ले ? खानेकी चीजें तो ज्योंकी त्यों धरी रहेंगी। अरे अभावके कहाँ पेट है ? कहाँ मुख है, वह कहाँसे खा लेगा ? तो इसी प्रकार कहा कि दुःखके अभावका अनुभव करता है तो दुःखका अभाव, दुःख नहीं, ऐसा 'न' ऐसा असद्भाव, उसका अनुभव क्या कर लिया जायगा ? अजैनका अर्थ है जो जैन नहीं हैं अन्य हैं ऐसे पुरुषोंको खिलाओ तो उसमें खिलानेकी भी बात आ गई, खर्च भी हो गया, बात भी चल गई क्रिया भी हो गई। अगर किसी अभावका अर्थ केवल 'न' लिया जाय, मात्र अभाव, तो उसमें अर्थक्रिया क्या, परिणमन क्या ? बात ही कुछ नहीं निभ सकती है। तो आत्माका अभावमात्र अभाव नहीं, वह सुखके सद्भावरूप है। जितने भी अभाव होते हैं वे प्रतियोगीके सद्भावरूप हुआ करते हैं। नित्य नहीं, इसका अर्थ क्या ? अनित्य।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनित्य नही इसका अर्थ क्या ? सदा रहने वाला। जितने भी अभाव हैं उनका अर्थ उनके प्रतियोगियोंके सद्‌भावरूप हुआ करता है। अभाव तुच्छाभाव नही।

आनन्दस्वरूपकी उपयोगिताका प्रतिपादन—आत्माका स्वरूप आनन्द है और आनन्दका परम विकासका नाम मोक्ष है। इसमें कोई गल्ती नहीं लेकिन एक-मात्र आनन्द ही है आत्मामें। और वह अपरिणामी है, उसका न ज्ञान है, न अनुभव है, न प्रवर्तन है, उस आनन्दका कुछ उपयोग नही है और है आनन्दस्वरूप, तो वह आनन्दस्वरूप और क्या है ? सो बताओ ! यह कथनमात्र है। कोई आदमी प्रसन्न हो कर यह कहे कि साहब, आप जीमिये ! यह थालीभर भोजन रखा है पर इसमें हाथ मुख आदि कुछ न लगावो ! अच्छा आपको जिमाया। यदि वह हाथ लगानेकी ही सिर्फ मनाही करता तब तो पशुवोंकी भांति बिना हाथ लगाये सिर्फ मुखसे ही खाया जा सकता था, पर मुख भी लगानेके लिए मनाही है, तब फिर आप उस भोजनको कैसे खा सकेंगे ? वह भोजन तो जैसाका तैसा ही रखा रहेगा ! तो ऐसे ही आप समझिये कि जहाँ आनन्दका कुछ भी अनुभव नही हो सकता, कुछ उपयोग नही हो सकता और है वह आनन्द, तो वह आनन्द क्या है ? तो ऐसा अपरिणामी कूटस्थ आनन्दका स्वभाव नही है, पर हाँ आत्मा आनन्दस्वरूप है और चूंकि प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है तो आत्मा भी अगले क्षणमें नवीन पर्यायरूपसे उत्पन्न होता है और पूर्वपर्यायरूपका विलय करता है तो ऐसा होनेपर सभी गुणोंकी बात आगयी। सभी विशेषताओंकी भी यही बात है आनन्द भी अब नवीन क्षणमें नवीन अनुभूत हो रहा है, पुराना आनन्द अब विलीनरूप हो गया है। तो इस अनुभव और परिणमन की दृष्टिसे आनन्दका उपयोग चलता रहता है।

आत्मामें आनन्दस्वरूपकी अभिव्यक्तिका कारण—आनन्दस्वरूप प्रत्येक आत्मामें है, किन्तु संसारावस्थामें आवरणोंके कारण इस आनन्दस्वरूपका घात होगया है। अविकाररूपसे प्रकट नही हो पा रहा है, बस यही तो संसार है, यही सङ्कट है, और जब उन आवरणोंका अभाव हो जाता है और यह स्वरूप व्यक्त हो जाता है तो बस इसीका नाम मोक्ष है। उस आनन्दके आवरण करने वाली अनेक बातें हैं। जैसे विषयोंका व्यासङ्ग होना, विषयोंमें लग जाना, कषायोंमें उपयोगी होना, शरीरका बन्धन रहना, इन्द्रियसे ज्ञान करना, कर्मका उदय होना ये सभी कोई किसी दृष्टिसे कारण है कोई किसी दृष्टिसे। जब इस कारणभूत उपाधिका अभाव होता उस समय यह आनन्दस्वभाव विशुद्ध रूपमें प्रकट होता है उस समय आनन्द ही क्या। वहाँ अनन्त ज्ञान भी प्रकट होता है अनन्त दर्शन और अनन्त शक्ति भी प्रकट होती है। यह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति अनन्त आनन्द इस चतुष्टयस्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है, ऐसा कोई मोक्षका स्वरूप समझले तो उसकी प्रतीक्षा की जा सकती है और उस स्व भावकी उपासनामें यहाँ भी आनन्द पाया जा सकता है। इस आनन्द संवेदनके प्रतापसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्मोंका क्षय करके शीघ्र ही ऐसे अनन्त चतुष्टयस्वरूप हो सकेंगे।

अपनी ही प्रासंगिक चर्चा - इस प्रसंगमें अपने आपकी ही बात कही जा रही है। यह आत्मा क्या है ? यह स्वरूप किस रूप है इसमें क्या प्रभाव है और उसके बारे में बड़े-बड़े दार्शनिक लोग क्या क्या मंतव्य रख रहे हैं, यह बात तो एक बहुत पसंद की होना चाहिये। इसका वर्णन चर्चण एक बहुत हर्षोत्पादनकी बात होना चाहिये तो अपनी बात जिसपर कि हमारा सब कुछ भवितव्य निर्भर है उसकी बात सुननेमें रुचि न लो और ये फाल्तू बाहरी बातें धन वैभव नाते रिस्ते कुटुम्ब परिजन आदि इनके सुननेमें बहुत रुचि लगे, ये बातें बहुत पसंद आयें तो आखिर बतलावो कि यह किस गतिकी निशानी है ? कुछ विशेष उम्र गुजर जानेके बाद मनुष्य भवके ये सब अनुभव कर चुकनेके बाद भी अब भी चित्तको इस प्रकार न बनाया जाय कि आत्माकी बात सुननेमें रुचि हो धर्मके धारणमें रुचि हो, बाह्य पदार्थोंकी उपेक्षा हो तो अपने आप बतलावो कि इसी रफ्तारमें करूँगा करूँगा करूँगा, होगा क्या ? क्या यह बात भूल गए कि मरूँगा, मरूँगा, मरूँगा ? तो इस ओर दृष्टिपात करनेके दिन हैं अब। वैसे तो मनुष्यभवमें बाल्यावस्थासे ही कल्याणकी साधना करे तो वह विशेष सौभाग्यवान है लेकिन सब खेल देखनेके बाद भी, सबसे धोखा खानेके बाद भी फिर उसी तृष्णामें चित्त जाय और अपनी बातकी रुचि न जगे तो यह योग्य बात नहीं है। यह मोक्षके स्वरूपकी चर्चा चल रही है। मोक्षके मायने क्या कि बाहरी चीजें छूट जायें और खालिस यह रहे जैसा है। तो खालिस रहता है तो यह क्या रहता है ? इसका कैवल्य स्वरूप क्या है ? उसके सम्बन्धमें यहाँ दार्शनिक लोग अपनी बात रख रहे हैं।

आत्माके नित्यसुखके सम्बन्धमें वैशेषिक द्वारा किये गये दो विकल्प-- भास्करीय वेदान्तियोंने मोक्षस्वरूपके सम्बन्धमें तो यह बात रखी कि आत्माका गुण आनन्द है और उस आनन्दगुणकी परम अभिव्यक्तिका नाम है मोक्ष। और, वैशेषिकों ने यह बात रखी कि आत्मामें जो ज्ञानादिक गुण बसे हुए हैं इन गुणोंका सर्वथा विनाश हो जाय, अलग हो जाय, यह आत्मा गुण रहित हो जाय इसका नाम मोक्ष है। यहाँ वैशेषिक वेदान्तियोंसे पूछ रहे हैं कि यदि सुख आत्माका स्वरूप है तो वह नित्यसुख आत्मासे अभिन्न है या भिन्न है ? अर्थात् आत्माका स्वरूप जो सुख माना जा रहा है वह सुख आत्मासे अभिन्न है अर्थात् सुखमय ही आत्मा है या आत्मा और सुख ये दो भिन्न भिन्न चीजें हैं। फिर यह सुख आत्मामें आ गया। ये दो विकल्प किए।

नित्यसुखको आत्मासे अभिन्न माननेपर वैशेषिकों द्वारा आपत्तिदर्शन-- यदि कहो कि आत्माका सुख आत्मासे अभिन्न है, अलग कहाँ है, तन्मय ही आत्मा है तो वैशेषिक यह आपत्ति दे रहे हैं कि यदि आत्माका स्वरूप सुख है और वह सुख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मासे अभिन्न है तो जैसे आत्माका नित्यस्वरूप चैतन्य वह आत्मामें सदा रहता है इसी प्रकार आत्मामें सदा ही सुखका सम्वेदन होना चाहिए। यदि सुख आत्मासे अभिन्न गुण है, अभिन्न स्वरूप है तो जैसे आत्मा चैतन्यका निरन्तर अनुभव करता है इसी प्रकार इस नित्यसुखका, इस महासुखका भी सदा अनुभव करता रहे आत्मा। और यदि ऐसा मान लिया जायगा तो फिर मुक्तजीवोंमें और जीवोंमें कुछ भी फर्क न रहेगा। जीव तो सब एकसे हैं, मुक्त जीव हों या संसारी। और मान लिया आत्माका स्वरूप सुख और उसे भी माना अभिन्न, तो मुक्त भी उस सुखको भोग रहे और संसारी भी उस सुखको भोगें, फिर संसारी जीवोंमें और मुक्त जीवोंमें अन्तर क्या रहेगा ?

स्वप्रकाशानन्दसंवेदनका अविद्या द्वारा आच्छादनका वेदान्तियोंका कथन—वैशेषिक द्वारा उक्त आपत्तिके देनेपर वेदान्ती कह रहे हैं कि भाई अनादि कालीन अविद्यासे ये संसारी जीव आच्छादित हैं इस कारणसे स्वप्रकाशरूप भी आनन्दका सम्वेदन नही हो रहा है। स्वरूप तो सुखका है प्रत्येक आत्माका। संसार अवस्थामें रहने वाले आत्माका सुख स्वरूप है किन्तु उस सुखपर अविद्याका आवरण छाया है। तो जिस चीजपर आवरण छाया हुआ होता है वह चीज प्रकट तो नही हो पाती है। जैसे सूर्यपर मेघोंका आवरण जब पड़ जाता है तो सूर्यका प्रकाश प्रकट नहीं हो पाता है इसी प्रकार किसी भी वस्तुपर जब कोई आवरण पड़ा हुआ होता है तो वह चीज प्रकट नहीं हो पाती है। जैसे किसी घरमें किसी त्यागीका आहार होना है, कमरा बहुत ही छोटा है, उसी कमरेके अन्दर सारा सामान रखा है और चौका भी लगाया गया है तो श्रावक लोग उस त्यागीके आते समय उन सारी सामग्रियोंको किसी कपड़ेसे ढक दिया करते हैं। तो जब तक वह कपड़ा हटाया नहीं जाता तब तक वे चीजें प्रकट नहीं हो पाती हैं। कपड़ेको जरासा उघाड़ दिया गया अर्थात् उन वस्तुवोंपर पड़े हुए आवरणको दूर कर दिया गया तो वे सारी वस्तुएं जो कि उस आवरणसे ढकी हुई थीं वे प्रकट हो जाती हैं। इसी तरह आत्मामें वह सुख सदा रहता है लेकिन उसपर अविद्याका आवरण छाया है तो सुख स्वभाव होनेपर भी आत्माका सुख प्रकट नही हो पा रहा है।

स्वप्रकाशानन्दसंवेदनके अविद्या द्वारा आच्छादनकी अशक्यताका वैशेषिकों द्वारा कथन—अविद्या द्वारा नित्य सुख सवेदनके आच्छादनके कथनपर वैशेषिक जबाब देते हैं कि उस स्वप्रकाशात्मक आनन्दसम्वेदनपर अनादि अविद्याका आच्छादन नही बन सकता क्योंकि आवरण उस वस्तुपर हुआ करता है जो अप्रकाश रूप हो। प्रकाशरूप आनन्दको कौन ढाँक सकेगा ? यदि यह कहो कि सूर्य तो प्रकाश रूप है, उसे तो मेघोंने ढक दिया तो भाई सूर्य और मेघका दृष्टांत तो इससे बिलकुल भिन्न है सूर्य भी मूर्तिक है और मेघ भी मूर्तिक है तो प्रकाशमय होनेपर आखिर सूर्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पिण्ड ही तो है उसका आच्छादन मेघोंसे बन सकता है मगर वह सम्वेदन सुख दुःख का ज्ञान जो कि स्वयं अमूर्त प्रकाशमय है उसके कहां आवरण होता ? जब कभी आप अपना ज्ञान घरमें कई कोठरियोंके भीतर रखी हुई चीजका ध्यान करते होंगे कि अमुक गहना, तो आपके ज्ञानपर इतने तो आवरण पड़ गए घरके किवाड़ बन्द हैं, भीतरकी कोठरीके किवाड़ बन्द हैं, तिजोरीमें भी ताला लगा है। उसके भीतर रखे हुए बक्समें भी ताला लगा है, पर उन सबको पार करके आपका ज्ञान झट वहां पहुँच जाता है जहां आपका वह गहना रखा है, साफ दिखता है। किसीसे भी तो वह ज्ञान नहीं रुका। तो जो प्रकाशमय है, ज्ञानरूप है, अमूर्त है उसे कौन रोक सकता है ? तो आनन्द सम्वेदन है, ज्ञान है, आनन्दको रोक सकने वाली अविद्या भी नहीं हो सकती, और फिर अविद्या चीज क्या है। अविद्याकी सत्ता कैसी है न तो इसे कोई बता सकता और न कोई यह बता सकता कि अविद्या अभी तो पड़ी थी और अब मिट गई। कोई चीज हो तब ना। अविद्या तो तुच्छस्वभावरूप है। जहाँ 'अ' लग गया अर्थात् न' लग गया वह तुच्छ स्वभाव है। विद्याका न होना इसका नाम अविद्या है। विद्या कुछ चीज नहो है, कोई परिणमने वाली चीज नहीं है अविद्या। किन्तु विद्याके अभावका नाम अविद्या है। अब तुम कहो कि विद्याका आवरण विद्याके अभावने कर रखा तो इसका कुछ अर्थ भी लगता है क्या ? तो अविद्या तो तुच्छ स्वभावरूप है, वह आत्माके प्रकाशमय आनन्दका आवरण करने वाला नहीं हो सकता। तब आनन्द सम्वेदनका आत्माके स्वरूपका आत्माके ज्ञानका सुखका कोई आवरण कर सकने वाला न हो सका और सुखको माना तुमने आत्मासे अभिन्न। तो जैसे मुक्त जीवोंको सुखका सम्वेदन होता है इसी प्रकार संसारी जीवोंको भी सुखका सम्वेदन होना चाहिए। इस कारण यह पक्ष तो तुम्हारा न बन सका कि आत्माका सुख आत्मासे अभिन्न है।

सुखको आत्मासे भिन्न माननेपर आपत्ति—अभी वैशेषिक ही वेदान्तियों के प्रति कहे जा रहे हैं कि सुखको आत्माका स्वभाव माननेपर यह बताओ कि वह सुख आत्मासे अभिन्न है भिन्न ? अभिन्न माननेकी बात तो बनी नही। यदि कहो कि आत्माका सुख आत्मासे भिन्न है तो भला वह नित्य सुख आत्मासे जुदा है, ऐसा किसीने प्रत्यक्षसे देखा क्या ? अथवा अनुमान आदिक किसी प्रमाणसे सिद्ध हो सकता है क्या ? नित्य सुख तो अलग पड़ा हुआ है, वह अपनी सत्ता जुदी रख रहा है और आत्मा अलग पड़ा है वह अपनी सत्ता जुदी रख रहा है फिर आत्माका नित्य सुख क्यों ? क्या यह चौकी खंभाकी है ? अरे खंभा खंभा है, चौकी चौकी है। फिर चौकी को खंभाकी कैसे कहते ? हां मोही पुरुष जरूर कहते हैं कि खंभा हमारा है, चौकी हमारी है। अरे तुम भी एक पदार्थ हो और खंभा चौकी आदिक भी एक पदार्थ हैं। फिर कोई पदार्थ किसी दूसरेका कैसे बन सकता है ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ममकारकी भूल ये मोही जीव इस धन वैभवको अपना मानते हैं, पर यह उनकी बड़ी भूल है। यह तो अपने पाये हुए ज्ञानका दुरुपयोग किया जा रहा है। समस्त पदार्थ स्वयं सत्तावान हैं। पर पदार्थोंमें यह मेरा है इस प्रकारकी जो अपनायत की जाती है यह तो अपने ज्ञानका दुरुपयोग है। जो दिखने वाले ये ज्ञानरहित पदार्थ हैं ये सब जैसे न्यारे न्यारे पड़े हुए हैं, ये कुछ भी मेरा तेरा नहीं कर पाते इसी तरह मेरा तेरा इस आत्माको भी न करना चाहिए, किन्तु जैसे ये सद्भूत पुद्गल इसी तरह सद्भूत यह आत्मा है, तो ज्ञान पाया है तो उस ज्ञानसे पदार्थोंका सही स्वरूप जानना और यथार्थ जानकर अपना हित कर लेना बस यही कर्तव्य है, और जितना जल्दी बने सो करलो। जैसे यहां लूटमार चल रही हो और किसीको कोई चीज हाथ लगते देखे तो उस चीजको लेनेके लिए लोग कितनी जल्दी करते हैं इस चीजको झटले लो, इस चीजको झट ले लो, यों उतावल मचाते हैं। इसी तरह लूटमारका संचार है जन्म मरण संयोग वियोग आदिकके लूटमार चल रहे हैं। इस लूटमारके बीचमें यदि आपको ऐसे विशिष्ट ज्ञान वाला मनुष्य भव मिला है तो इसका उपयोग झट करलो। इसकी उतावल करना चाहिये। यदि यहां प्रमाद रखा तो इस लूटमारमें यह मनुष्य भव भी लुट जायगा, हाथ कुछ न रहेगा।

दार्शनिकोंके तत्त्वनिर्णयप्रयासकी प्रशंस्यता – आत्माका किसमें हित है? क्या धर्म है और किस प्रकार है ? उसके सम्बन्धमें जो अनेक दार्शनिकोंने अनेक प्रकारकी धारणायें की हैं कुछ तो उनकी बुद्धिकी प्रशंसा करनी चाहिए। उन्होंने दिमाग लगाकर बड़ी ईमानदारीसे ही कुछ निरखना चाहा, यह बात और है कि वे समझमें कितना बढ़ सके, नहीं बढ़ सके, मगर सभी दार्शनिकोंकी प्रशंसा की जानी चाहिए। उन सबने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार ईमानदारी रखकर आनन्द, मोक्ष, निराकुलता अथवा शान्ति चाही। इन सब बातोंका ध्यान रखकर उन्होंने खोज की है और वस्तुके स्वरूपको जानना चाहा है पर कोई सफल हुए या नहीं। यह बात एक निर्णय की है। जैसे विशेषिकोंने यह माना कि सारे गुण निकल जायें तो आत्माका मोक्ष होता है। तो मोटी दृष्टिसे यह तो समझमें आ रहा है ना, कि हममें यह ज्ञान लगा हुआ है इससे सारे दुःख हो रहे हैं। इन खंभा चौकी आदिमें ज्ञान नहीं है तो इनको कोई दुःख नहीं होता है। तो उन्होंने निष्कर्ष यह निकाला कि जब आत्मा ज्ञानरहित हो जायगा तो फिर इसे दुःख कैसे होगा ? भले ही यह न पहिचाना कि ज्ञानका स्वरूपमात्र जानन है, जहां विकल्प ही नहीं उठते। जिन विकल्पोंसे अशान्ति पायी जा रही है और जिन विकल्पोंरूप ही ज्ञानका स्वरूप मानकर उस ज्ञानको दूर करके मोक्षका स्वरूप बनाया जा रहा है वह ज्ञानका स्वरूप नहीं है। ज्ञानका स्वरूप प्रतिभासमात्र है। उसको हटानेकी जरूरत न थी। वेदान्ती जनोंने आत्माका आनन्द स्वरूप माना है। कोई बिगाड़की बात तो नहीं है। यह ज्ञानानन्दरूप है ही और जो आनन्दस्वरूप है जो भी स्वरूप होता है वह वस्तुमें सदा रहता है। तो इस आनन्द

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूपको नित्य मानना इसमें भी कोई बिगाड़ नहीं है, पर ऐसा नित्य मान लेना, ऐसी उनकी भक्ति बढ़ा लेना कि उसे अपरिणामी नित्य मान लिया जाय बस यहाँ गाड़ी रुक जाती है। परिणामी नित्य माननेपर तो सर्वसङ्गत है। यहाँ वैशेषिकों ने आत्मसुखके बारेमें नित्य अनित्यका विकल्प रखकर निराकरण किया है कि आत्मा का स्वरूप सुख नहीं है और इस कारण परम आनन्दकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष है नहीं, किन्तु आत्माके सुख दुख ज्ञानादिक समस्त गुणोंके उच्छेद होनेका नाम मोक्ष है।

मोक्षके आनन्दरूपताकी उपादेयता—यहाँ तक वेदांत और विशेषवाद इन दोनोंके परस्पर प्रश्नोत्तर होते रहे अब इन दोनों मंतव्योंके बीच हम यथार्थतापर कैसे पहुंचे और इन दोनोंसे सम्बन्धित हम क्या स्वरूप मानें इस विषयमें कुछ कहा जा रहा है। मोक्षके स्वरूपमें ये मुख्य दो विवाद उठे हैं—एकका कथन है कि मोक्ष आनन्दस्वरूप है, और एक कहता है कि आत्माका मोक्ष गुणरहितपना है। सभी गुण अलग हट जायें उसका नाम मोक्ष है। इन दोनोंके बीच कुछ भी विचार करनेपर थोड़ा भी विचार करने वाला व्यक्ति इस बातको पसन्द करेगा कि मोक्ष आनन्दस्वरूप है और यहाँ सीधी सी बात है कि यदि आनन्द ही नहीं है तो ऐसे मोक्षके लिए यत्न ही कौन करेगा? तो मोक्षकी आनन्दरूपता तो अभीष्ट है, सही बात है, मगर आनन्दरूपता अपरिणामी नित्य है, उसमें कुछ परिणमन नहीं होता, बस यह बात प्रतिषेधके योग्य है।

चैतन्यस्वरूप और आनन्दस्वरूपकी नित्यानित्यात्मकता—यहाँ नित्यवादी प्रश्न कर रहा है कि जैसे आत्माका चैतन्यस्वरूप नित्य है ना, तो इसीप्रकार आनन्दस्वरूपका भी एकांत नित्य मानलो तो क्या आपत्ति है? स्याद्वादी उत्तर देता है कि कौन कहता है कि आत्माकी चिद्रूपता भी एकांत नित्य है? जैसे आनंदरूपता एकांत नित्य नहीं इसी प्रकार चैतन्यस्वरूपता भी एकान्त नित्य नहीं इसी प्रकार जितनी भी वस्तुएं हैं, जितनी भी वस्तुयें हैं, जितने भी वस्तुवोंके स्वभाव हैं वे सब परिणामी नित्य हुआ करते हैं। उत्पन्न हो होकर भी नित्य है, परिणमन करते हैं। और, इसको थोड़े शब्दोंमें समझना है तो एक सूत्रसे समझ सकते हैं। तत्त्वार्थसूत्रमें कहा है—तद्भावाव्ययंनित्यं। इसमें ३ शब्द हैं—तत्, भाव और अव्यय। भावका अर्थ है होना, तत् मायने उसका। उसके होते रहनेका नाश न हो सके उसका नाम मोक्ष है, अर्थात् पदार्थ सदा होता रहे, परिणमता रहे, नई-नई अवस्थायें पाता रहे, उन अवस्थाओंके पाते रहनेका विनाश न हो इसका नाम नित्य है। नित्यका यह अर्थ नहीं कि अपरिणामी है, है सो है, उसमें कुछ वर्तना नहीं, कुछ परिणमन नहीं। तो क्या सिद्ध हुआ कि आत्मामें नित्यस्वरूप है और उसकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष है, पर वह आनन्दस्वरूप नित्यानित्यात्मक है।

आनन्दस्वरूपकी अभिव्यक्तिका कारण—यहां शङ्काकार पूछता है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि आनन्दस्वरूप अनित्य है तो आनन्दरूपताका परिज्ञान होनेका, सम्वेदन होनेका, अनुभव होनेका कारण बतलावो कि उसकी अभिव्यक्ति, उसका सम्वेदन किस कारण से उत्पन्न होता है ; क्योंकि जो भी चीज अनित्य होती है उसकी उत्पत्तिका कोई कारण है। अब आपने मान लिया आत्माका सुख नित्य है तो उस सुखका जो अनुभव होता है उसकी उत्पत्तिका क्या कारण है ? समाधानमें कहते हैं कि उस सुखका प्रतिबन्धक जो आवरण है, कर्म है, अथवा बाह्य संसर्ग है, उम सबका विनाश हो जाना सुखकी अभिव्यक्तिका कारण है, सुखके सम्वेदनका कारण है। संसार अवस्थामें यह ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा प्रतिबन्धसे सहित है, इसपर आवरण छाये हैं, ज्ञानावरण आदिक अष्ट कर्मोंका आवरण है, और अन्तः आवरण विषय कषायोंके परिणामका है। मोक्ष अवस्थामें प्रतिबन्धक नही रहता, समस्त प्रतिबन्धक कर्मोंका क्षय हो जाता है तब वहाँ अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न होता है तो अतीन्द्रिय ज्ञान अतीन्द्रिय सुखके उत्पन्न होनेका कारण है आवरणका विनाश।

चिदानन्दस्वरूपकी विशुद्ध व्यञ्जनाका विवरण—जैसे घरमें दीपक जल रहा है और उसपर कोई घट आदिकका आवरण कर दिया जाय अथवा जैसे लालटेन जल रही है और उसपर एक खुला कनस्तर औंधा रख दिया जाय तो उस लालटेनका प्रकाश होने लगा और अब एक बार आवरण हटनेके बाद अब प्रकाश ही प्रकाश लगातार चल रहे हैं। अब वहां कोई आवरण हटानेकी जरूरत नही है। आवरण रहा ही नही है, उन प्रकाशोंमें उत्तर अप्रकाश उत्पन्न करनेका स्वभाव पड़ा है। यहां यह स्थूलरूपसे बात कही जा रही है कि जैसे मानो लालटेनके ऊपर खुला हुआ औंधा कनस्तर रख देनेसे कनस्तरका आवरण होनेसे प्रकाश बिल्कुल बन्द है और आवरण हटा दिया, कनस्तर दूर कर दिया तो अब प्रकाश ही प्रकाश हो गया ना कमरेमें ? हो गया। अब इसके बाद जो कमरेमें लगातार प्रकाश ही प्रकाश जल रहा है तो इस सारे प्रकाशके चलनेके के लिए अब आवरण हटानेकी जरूरत नही है। यह तो नहीं है कि प्रति सेकेण्ड कनस्तर हटाया जाय तब प्रकाश होगा ? पहिला जो प्रकाश है वह आवरणके दूर होनेपर हुआ है, अब तो उस प्रकाशमें स्वभाव ही ऐसा पड़ा है कि वह अपनेमें उत्तरोत्तर प्रकाशको उत्पन्न करता रहे। इसी तरह केवल ज्ञानके उत्पन्न होनेमें प्रथम आवरण केहटाने की आवश्यकता है जिसे कहते हैं क्षायिक भाव। कर्मोंके क्षयसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है तो केवलज्ञान क्षायिक है। तो क्षायक तो है मगर पहिले समयमें जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वह है क्षायिक। वह कर्मोंके क्षयसे दूर होता है। अब इसकी जरूरत नहीं है कि प्रतिसमय कर्मोंका क्षय हो तो केवलज्ञान बने। फिर तो केवलज्ञानमें स्वभाव ही ऐसा पड़ा है कि वह ज्ञान पूर्वज्ञान उपादान बनकर उत्तर वैसे ही ज्ञानको उत्पन्न करता रहे। जब कुछ आवरण लगा नही तो आवरण हटानेकी जरूरत क्या है ? जो जिसको उत्पन्न करनेका स्वभाव रखता है वह उसको उत्पन्न करनेमें अन्यकी अपेक्षा नही रखता। जैसे एक बीजसे

http://sahjanandvarnishastra.org/

अंकुर उत्पन्न होता है। कब ? सारे कारण कूट मिल चुकनेपर। खाद पड़ी, खेत जोता, समयपर बीज डाल दिया, और कुछ सर्दी गर्मी लगनेपर उस बीजमें कुछ अन्य ही विशेषता आयी, समझ लीजिये कि अन्तिम कारण सामग्री सब कारण पूर्ण जुड़नेपर जो अन्तिम स्थिति है वह अंकुरको उत्पन्न करनेमें समर्थ है अब उसे कौन रोकेगा ? इसी प्रकार जो भी पदार्थ जिस स्थितिमें पूर्ण समर्थ है, उत्पन्न करनेमें वह दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखता। आवरणके क्षय होनेपर उत्पन्न हुए केवलज्ञानमें अब उत्तरोत्तर उन ज्ञान ध्यानोंको उत्पन्न करनेका स्वभाव है अब इस आवरणरहित आत्मामें, स्व कारणसे निरन्तर अतीन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रिय सुखका अनुभवन चल रहा है।

सहजानन्दानुभवकी सेन्द्रियशरीर व्यापाराजन्यताकी सभावनापर प्रकाश—भैया ! यहां संसार अवस्थामें भी देखो – ऐसे साधुपुरुष जिनको बसूला और चन्दन दोनोंमें समभाव है। कोई हथियारसे उनके शरीरका अङ्ग छील रहा हो या कोई दूसरा उनके ही शरीरपर चन्दनका लेप कर रहा हो अर्थात् एक व्यक्ति तो दुःखका साधन कर रहा है और एक व्यक्ति आरामका साधन कर रहा है लेकिन वे साधु पुरुष उन दोनों ही प्रकारके पुरुषोंके प्रति समताका व्यवहार करते हैं। ऐसे सर्व पदार्थोंमें समान वृत्ति रखने वाले साधुओंको जब वे विशिष्ट ध्यानमें आते हैं, उस समय उनको परम आह्लादका अनुभव होता है उत्कृष्ट आनन्दका अनुभव होता है। वह अनुभव न इन्द्रियजन्य है, न शरीरकी चेष्टासे उत्पन्न होता है। इन्द्रिय और शरीर दोनोंकी चेष्टासे न होकर अपनेसे जब अन्य विशिष्ट आनन्द होता है उससे जब उनकी भावना अधिकाधिक बढ़ जाती है तो उत्तरोत्तर अवस्था, उत्कृष्टतासे वह ज्ञान और आनन्द प्राप्त होता जाता है और इस ही भावनाके अभ्यासके बलसे उस ज्ञान और आनन्दकी अन्तिम काष्ठा प्राप्त हो जाती है अर्थात् ये साधुजन आत्माका ध्यान करके जिस विशुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्दका अनुभव किया करते हैं उस हीका अनुभव, उस हीका अभ्यास, उस हीकी भावना जब बहुत बहुत बढ़ जाती है तो अत में उस ज्ञान और आनन्दकी हद भी पूर्ण प्राप्त हो जाती है। बस उस अनन्तज्ञान, उस अनन्त आनन्दका जहां विकास है उस हीका नाम मोक्ष है। अतः यह बात युक्त है कि मोक्ष आनन्द स्वरूप है और अतीन्द्रिय आनन्दके अनुभवन रूप है।

अविद्या और उसके निमित्तसे ज्ञानानन्दस्वरूपका आच्छादन—वेदान्त सिद्धान्तने यह कहा था कि आत्माका स्वरूप आनन्द है प्रत्येक आत्मामें आनन्दस्वरूप निरन्तर नित्य रहता है पर उसकी अभिव्यक्ति मोक्षमें होती है। संसारकी अवस्थामें नहीं होती है। इसका कारण यह है कि संसारी जीवोंपर अनादि अनन्त अविद्या छायी होती है। जब इस अविद्याका विलय होता है तो अविद्या नष्ट होनेपर फिर ब्रह्मके आनन्दस्वरूपकी अभिव्यक्ति होती है इस पर वैशेषिकोंने यह इतराज किया था कि ब्रह्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूप तो प्रकाशमय है स्वप्रकाशमय आनन्द सम्वेदनका तिरोभाव अनादि अविद्याके द्वारा नहीं हो सकता और फिर अविद्याका कुछ वास्तविक स्वरूप ही नहीं है। वह तो अभाव ही है। विद्या न हो सो अविद्या इसपर स्याद्वादी कहता है कि यह बात युक्त है कि अनादि कालसे अविद्या लगी चली आ रही है उस अविद्या उपाधिके कारण ब्रह्म स्वरूपके आनन्द तत्त्वकी अभिव्यक्ति नहीं होती है, लेकिन वह अविद्या क्या है इसका सही निर्णय रखना चाहिये। अविद्या नाम है अज्ञानका। जहाँ ज्ञान न पाया जाय उसे अविद्या कहते हैं। तो ऐसा कौन सा अज्ञान जीवोंके ज्ञानानन्दस्वरूपको रोकनेमें निमित्त होता है? वह अज्ञान है ८ प्रकारका कर्म प्रवाह जो पौद्गलिक कार्माणवर्गणाओंका कर्मत्वरूप परिणमन हुआ है ऐसा ८ प्रकारका कर्म प्रवाह जो है उसे अनादि अविद्या कहते हैं। जिसके उदयके निमित्तसे जीवके ज्ञानानन्दस्वरूपकी अभिव्यक्ति नहीं होती। यद्यपि अन्तरङ्ग दृष्टिसे यह भी कहा जा सकता कि विषय कषायके विकल्प अविद्या हैं और यह अविद्या ब्रह्मके आनन्दरूपको ज्ञानरूपको प्रकट नहीं होने देती लेकिन वह अविद्या निमित्तरूप नहीं है, वह तो विरोधी परिणमन है अर्थात् ज्ञानानन्दके प्रकाशमें और विषय कषायोंके विकल्पमें परस्पर विरोधरूप नाता है, निमित्तरूप नहीं है निमित्त दृष्टिसे तो ८ प्रकारका पारमार्थिक कर्मोंका जो प्रवाहरूप है वही अनादि अविद्या है। जब उसका विलय होता है तो अनन्त सुख, अनन्तज्ञान आदिककी प्राप्ति होती है। यों अनन्त चतुष्टयस्वरूपके लाभका नाम मोक्ष है, यह बात युक्त होती है। मोक्ष स्वरूपके सम्बन्धमें अब तक मुख्यतया गुणोच्छेद रूप मोक्ष और आनन्दाभिव्यक्तिरूप मोक्षके सम्बन्धमें मीमांसा की गई है।

卐

Version 1